पंख तेरे हैं!

परंपरा का आँचल, प्रगति के पंख!

माही शुक्ला 'ऋषि'

BlueRose ONE.com
Stories Matter
NewDelhi • London

BLUEROSE PUBLISHERS
India | U.K.

Copyright © Mahi Shukla 'Rishi' 2026

All rights reserved by author. No part of this publication may be reproduced, stored in a retrieval system or transmitted in any form or by any means, electronic, mechanical, photocopying, recording or otherwise, without the prior permission of the author. Although every precaution has been taken to verify the accuracy of the information contained herein, the publisher assumes no responsibility for any errors or omissions. No liability is assumed for damages that may result from the use of information contained within.

BlueRose Publishers takes no responsibility for any damages, losses, or liabilities that may arise from the use or misuse of the information, products, or services provided in this publication.

For permissions requests or inquiries regarding this publication,
please contact:

BLUEROSE PUBLISHERS
www.BlueRoseONE.com
info@bluerosepublishers.com
+91 8882 898 898
+4407342408967

ISBN: 978-93-7542-257-0

Cover design: Anuj
Typesetting: Tanya Raj Upadhyay

First Edition: February 2026

शक्ति-स्वरूपा शारदे

हे श्वेतवसना, ज्ञानदायिनी, शारदे माँ आइए,
नारी शक्ति, सुसंस्कृति का, मंत्र जग में गाइए।
हाथ में वीणा सजे, और मन में पावन विचार हो,
सशक्त हो हर लाड़ली, ऐसा नया संसार हो।
अब न अबला, अब न कोमल, शक्ति का आधार हो,
कंठ में तेरे ही स्वर हों, हाथ में हुंकार हो।
छू सके अंबर बेटियाँ, पंख ऐसे खोल दो,
ज्ञान के इस यज्ञ में, तुम प्राण अपने घोल दो।
निर्भय बने हर कामिनी, गौरव नया दिखलाइए,
हे श्वेतवसना, ज्ञानदायिनी, शारदे माँ आइए।
धरोहर पूर्वजों की जो है, लुप्त होने पाए ना,
पाश्चात्य की इस आंधी में, मूल्य खोने पाए ना।
मर्यादा की जो विरासत, बेटियों ने है बुनी,
संस्कारों की वो बेल फिर से, होवे दूनी-चौगुनी।
सभ्यता के दीप को, फिर प्रेम से सुलगाइए,
हे श्वेतवसना, ज्ञानदायिनी, शारदे माँ आइए।
कलम को सामर्थ्य देना, बुद्धि को विस्तार दो,
जहाँ नारी पूज्य हो, वैसा हमें संसार दो।
तुम ही हो सरस्वती, लक्ष्मी, तुम ही माँ काली हो,
तुम्हीं से पावन ये धरा, और खुशहाली ही खुशहाली हो।
अंधेरे जो छँट सकें, वो चेतना चमकाइए,
हे श्वेतवसना, ज्ञानदायिनी, शारदे माँ आइए।।

भूमिका

पंख भी, और जड़ें भी!

पच्चीसवें वसंत की दहलीज पर खड़ी होकर जब मैं अपने आस-पास की दुनिया को निहारती हूँ, तो मुझे नारीत्व के दो अलग छोर नज़र आते हैं। यह पुस्तक केवल स्याही और पन्नों का संग्रह नहीं है, बल्कि उस अंतर्द्वंद्व की गूँज है जिसे मैंने हर पल जीया है।

मेरा मानना है कि सशक्तिकरण (Empowerment) का अर्थ केवल बेड़ियों को तोड़ देना नहीं है, बल्कि यह साहस जुटाना है कि हमें किन मूल्यों को अपनी आत्मा में संजोकर रखना है। मैं उस नारीवाद की पक्षधर हूँ जो स्त्री को ऊँचे आकाश की अनंत ऊंचाइयों को छूने का हौसला देता है, लेकिन मैं उस 'तथाकथित' आधुनिकता के विरुद्ध हूँ जो हमें अपनी सांस्कृतिक जड़ों और समृद्ध परंपराओं से काट दे।

"अस्तित्व की ऊँचाई तभी सार्थक है, जब पैर अपनी मिट्टी पर टिके हों।"

आज की इस भागती हुई दुनिया में, स्वतंत्रता के नाम पर अक्सर हम अपनी शालीनता, मर्यादा और उन संस्कारों को ओझल कर देते हैं, जिन्होंने सदियों से नारी को 'शक्ति' का साक्षात स्वरूप बनाए रखा। मेरा यह लेखन उन महिलाओं के लिए एक संवाद है जो:

उच्च शिक्षित होना चाहती हैं।

आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर और स्वतंत्र होना चाहती हैं।

अपने अधिकारों के लिए डटकर लड़ना जानती हैं।

परंतु... अपनी तहजीब और मूल्यों की कीमत पर नहीं।

"पंख तेरे हैं!" एक आह्वान है—एक ऐसी स्त्री बनने का, जिसके एक हाथ में आधुनिक ज्ञान की मशाल हो और दूसरे में परंपराओं का दीया। आइए, हम अपनी अस्मिता को इस तरह गढ़ें कि हम प्रगतिशील भी हों और गौरवशाली भी।

यह सफर है खुद को खोजने का, बिना खुद को खोए।

पंख तेरे हैं!

पंख, परंपरा और प्रगति

स्त्री होना केवल एक अस्तित्व नहीं, बल्कि एक संपूर्ण ब्रह्मांड का विस्तार है। जब मैं इस कृति का नाम 'पंख तेरे हैं!' लिखती हूँ, तो मेरा ध्येय केवल आकाश की असीम ऊंचाइयों को छूना नहीं है, बल्कि उन 'जड़ों' को भी साष्टांग नमन करना है जिन्होंने हमें झंझावातों में अडिग खड़ा होना सिखाया। 24 वर्ष की इस आयु में, जहाँ जीवन के रंग और समाज के ढंग दोनों को करीब से देखने का अवसर मिला, मैंने अनुभव किया कि आज के इस तीव्र आधुनिक युग में सशक्तिकरण की परिभाषा भटक गई है।

आधुनिकता बनाम वैचारिक भटकाव

मैं स्पष्ट कर दूँ कि मैं आधुनिक होने के विरुद्ध नहीं हूँ। मैं उस आधुनिकता का स्वागत करती हूँ जो स्त्री के मस्तिष्क को तर्क और ज्ञान से प्रदीप्त करे। किंतु, मैं उस विचारधारा के विरुद्ध अवश्य हूँ जो 'स्वतंत्रता' की आड़ में स्त्रीत्व की गरिमा को धूमिल करती है।

मैं उस दिखावे के सख्त खिलाफ हूँ, जहाँ एक हाथ में शराब का गिलास और दूसरे में सुलगती सिगरेट को 'फैशन' या 'महिमामंडित आधुनिकता' का नाम दिया जाता है। यह सशक्तीकरण नहीं, बल्कि स्वयं के गौरवमयी स्वरूप का विस्मरण है। मदिरा और धुएँ में आजादी नहीं, बल्कि मर्यादाओं का पतन है। स्त्री 'शक्ति' का स्वरूप है, और शक्ति कभी व्यसनों की दासी नहीं होती।

हमारी अदृश्य शक्ति

महिला सशक्तिकरण का सच्चा अर्थ बेड़ियों को तोड़ना है, अपनी मर्यादाओं और परंपराओं को नहीं। मेरी लेखनी इस सत्य को समर्पित है कि एक नारी अपने प्रगतिशील विचारों से आसमान तो नापे, किंतु उसके पाँव अपनी मिट्टी की सोंधी महक और सांस्कृतिक विरासत में दृढ़ता से टिके रहें।

परंपराएँ हमारी बेड़ियाँ नहीं, बल्कि हमारी उस पहचान का आधार हैं जिसने सदियों से हमें 'जगदंबा' और 'शक्ति' के रूप में प्रतिष्ठित किया। हम आधुनिक होने के उत्साह में उस

शालीनता, धैर्य और संस्कार को कैसे विस्मृत कर सकते हैं, जो भारतीय संस्कृति की अमूल्य थाती है?

उड़ान: जड़ों की पहचान के साथ

यह पुस्तक उन स्त्रियों के लिए एक पुकार है जो चाँद पर कदम रखने का सामर्थ्य भी रखती हैं और अपने घर की देहली पर जलते हुए संस्कारों के दीपक की लौ को भी संजोना जानती हैं।

"पंख तुम्हारे हैं, उड़ान तुम्हारी है..."

मगर याद रहे, उसी परिंदे का अस्तित्व सुरक्षित रहता है जिसे लौटकर अपने घोंसले और अपनी जड़ों की पहचान होती है। जो परिंदा अपनी जड़ों को भूलकर उड़ता है, वह दिशाहीन होकर बिखर जाता है।

एक आह्वान

आइए, हम मिलकर एक ऐसे समाज का सृजन करें जहाँ 'शक्ति' और 'संस्कार' एक-दूसरे के विरोधी नहीं, बल्कि एक-दूसरे के पूरक हों। जहाँ हम शिक्षित भी हों और शालीन भी; हम स्वावलंबी भी हों और सुसंस्कृत भी।

यह पुस्तक मेरी उसी यात्रा का प्रतिबिंब है—एक हाथ में गुरुदेव के ज्ञान की मशाल और दूसरे में परिवार के संस्कारों का संबल लेकर 'स्व' की खोज की यात्रा।

— माही शुक्ला 'ऋषि'

कृतज्ञता के पुष्प

यह कृति उन दिव्य चरणों में सादर अर्पित है, जहाँ से मेरे जीवन की चेतना प्रवाहित होती है— परम पूज्य सदगुरुदेव भगवान अवधेशानंद गिरि जी महाराज। हे गुरुदेव! आपकी करुणा ही वह आकाश है जिसमें मेरी लेखनी उड़ना सीख रही है। आपने ही सिखाया कि ज्ञान का अर्थ केवल जानना नहीं, बल्कि अपनी जड़ों के प्रति सजग होना भी है।

यह शब्द-पुष्प मेरे उस 'संसार' के नाम, जिन्होंने मुझे उड़ने का हौसला दिया:

बा (दादी): जिनके अटूट विश्वास ने मेरी नींव को वज्र जैसी शक्ति दी।

माँ और पिता: जिनके द्वारा दिखाए गए समाज के यथार्थ ने मुझे सत्य को शब्दबद्ध करना सिखाया।

दादा : जिनके निश्छल स्नेह की छाँव में मेरी संवेदनाएँ पल्लवित हुईं।

भैया और छोटी बहन: जो मेरे संघर्षों के साथी और मेरी प्रेरणा की अविरल धारा हैं।

आप सब ने ही कहा— "माही, पंख तेरे हैं, उड़ जा!" और आपकी इसी प्रेरणा ने मुझे अपनी जड़ों से बंधे रहकर आसमान नापने का साहस दिया।

मैं, माही शुक्ला 'ऋषि', समस्त परिवार और पाठकों को प्रणाम करते हुए आपके शुभाशीष की कामना करती हूँ।

प्रस्तावना

अंतर्मन की उड़ान

"पंख तेरे हैं!" — यह मात्र एक शीर्षक नहीं, बल्कि हर उस स्त्री के अस्तित्व की वह गूँज है जो अपनी सीमाओं की परिधि को लांघकर अनंत क्षितिज को छूने का स्वप्न देखती है। 24 वर्षों के इस पड़ाव पर खड़ी होकर जब मैं पीछे मुड़कर अपनी 'जड़ों' को देखती हूँ और सामने पसरे असीम 'आकाश' को निहारती हूँ, तो मेरे भीतर एक द्वंद्व जन्म लेता है। यही अंतर्द्वंद्व, यही मंथन, इस कृति की आत्मा है।

सशक्तीकरण: एक पुनर्परिभाषा

आज 'स्त्री सशक्तीकरण' (Women Empowerment) एक प्रचलित विमर्श बन गया है, किंतु मेरे लिए इसका अर्थ वह नहीं जो बाज़ारों के विज्ञापनों या सतही बहसों में सुनाई देता है। अक्सर सशक्तीकरण को पुरुषों से 'होड़' या उनकी 'बराबरी' करने के तराजू में तौला जाता है। मैं विनम्रतापूर्वक इस विचार से असहमत हूँ। मेरा मानना है कि स्त्री को पुरुष के समान होने की आवश्यकता ही क्या है, जब प्रकृति ने उसे स्वयं में पूर्ण, अद्वितीय और अलौकिक बनाया है?

सशक्तीकरण का अर्थ किसी और के सांचे में ढलना नहीं, बल्कि अपनी उस सुप्त ऊर्जा को जाग्रत करना है जो सृजन और संहार, दोनों की सामर्थ्य रखती है। स्त्री पुरुष से कमतर नहीं है, और न ही उसे स्वयं को 'बेहतर' सिद्ध करने के लिए पुरुषत्व का मुखौटा ओढ़ने की आवश्यकता है। वह अपने आप में एक संपूर्ण ब्रह्मांड है।

आधुनिकता बनाम उच्छृंखलता

मैं आधुनिकता के विरुद्ध नहीं हूँ। मैं उस प्रगतिशील सोच का स्वागत करती हूँ जो स्त्री को शिक्षित, आत्मनिर्भर और मुखर बनाती है। लेकिन, मैं उस विचारधारा के कट्टर विरोध में हूँ जो 'स्वतंत्रता' को 'व्यसन' से जोड़ती है। आज आधुनिक दिखने की अंधी दौड़ में, यदि एक हाथ में मदिरा का गिलास और दूसरे में सुलगती सिगरेट को 'फैशन' या 'आजादी' का प्रतीक मान लिया गया है, तो यह सशक्तीकरण नहीं, बल्कि वैचारिक

पतन है। मर्यादाओं को तोड़ना प्रगतिशीलता नहीं है। वास्तविक आधुनिकता वह है जो हमारे विचारों को परिष्कृत करे, न कि हमारी शालीनता का चीरहरण।

परंपरा और प्रगति का संगम

इस पुस्तक का ध्येय उस भ्रांति को तोड़ना है कि पंख फैलाने के लिए जड़ों को काटना अनिवार्य है। संस्कार बेड़ियाँ नहीं, बल्कि वह 'लंगर' (Anchor) हैं जो तूफानों में भी हमारे अस्तित्व के जहाज को डूबने नहीं देते। बिना जड़ों के वृक्ष कितना भी ऊंचा क्यों न हो जाए, हवा का एक झोंका उसे धराशायी कर देता है। ठीक वैसे ही, बिना मूल्यों की स्वतंत्रता केवल उच्छृंखलता है।

एक सशक्त नारी वह है जो अंतरिक्ष तक पहुँचने का साहस भी रखती हो और घर की दहलीज पर जलने वाले कुल-दीप की मर्यादा को भी अक्षुण्ण रखती हो।

क्यों लिखी मैंने यह पुस्तक?

कोमलता दुर्बलता नहीं है। एक माँ, बेटी, पत्नी और पेशेवर स्त्री के रूप में वह जितने किरदार निभाती है, उतनी ऊर्जा किसी और में संभव नहीं। यह पुस्तक उन महिलाओं के लिए एक 'संवाद' है जो अपनी पहचान की तलाश में हैं। जो उड़ना चाहती हैं, मगर अपने संस्कारों का आँचल संभालकर। जो कंधे से कंधा मिलाकर चलना चाहती हैं, पर अपनी 'नारीत्व की गरिमा' को खोकर नहीं।

यह पुस्तक मेरे हृदय के उन उद्गारों का संकलन है जो आपको आपकी वास्तविक शक्ति से साक्षात्कार कराएंगे। जब आप इन पन्नों को पलटें, तो अनुभव करें कि आपके पंख किसी उधार की ताकत से नहीं, बल्कि आपके अपने आत्मविश्वास, चरित्र और गौरव से निर्मित हैं।

उड़िए, क्योंकि यह पूरा आकाश आपका है! पर सदैव स्मरण रहे—उड़ान वही शाश्वत है, जिसके पैर अपनी मिट्टी के प्रति वफादार हों।

— माही शुक्ला 'ऋषि'

!! लेखिका परिचय !!

माही शुक्ला 'ऋषि'

बहुमुखी प्रतिभा की धनी माही शुक्ला 'ऋषि' समकालीन साहित्य के आकाश में एक सशक्त और ओजस्वी हस्ताक्षर हैं। मध्य प्रदेश के बालाघाट जिले के ग्राम खैरलांजी की माटी से उपजी माही, अपनी जड़ों के प्रति जितनी समर्पित हैं, अपने विचारों में उतनी ही प्रखर।

मात्र 24 वर्ष की आयु में, उन्होंने शिक्षा और सृजन के दो भिन्न ध्रुवों के बीच एक सुंदर सेतु निर्मित किया है। MITS ग्वालियर से बी.टेक (B.Tech) की उपाधि प्राप्त माही पेशे से इंजीनियर हैं, किंतु स्वभाव से एक संवेदनशील कवि। वर्ष 2019-20 में प्रकाशित उनकी प्रथम पुस्तक 'टीन ऐज राइटर' ने किशोर मन के भावों को शब्द देकर उन्हें एक विशिष्ट पहचान दिलाई।

माही की लेखनी का मुख्य स्वर 'महिला सशक्तिकरण' है। वे केवल शब्दों का ताना-बाना नहीं बुनतीं, बल्कि सामाजिक चेतना की मशाल जलाती हैं। काव्य मंचों पर उनकी उपस्थिति श्रोताओं में जोश भर देती है, तो वहीं सोशल मीडिया पर उनकी रचनाएँ हज़ारों दिलों को प्रेरित करती हैं। उनके काव्य का तेवर इन पंक्तियों में स्पष्ट झलकता है:

"फ़ौलादी महिला है उसको रोली कुमकुम मत समझो,
अच्छी लगती है चरणों में शरणागत तुम मत समझो।
और समझ रहे हो अभी भी बातों से सबकी डर जाएगी,
दुर्गा है वो चामुंडा भी उसे गुज़रिया मत समझो।।"

एक इंजीनियर की तार्किक दृष्टि और एक कवयित्री के विद्रोही हृदय का यह संगम, माही शुक्ला 'ऋषि' को इस दौर की एक निडर और प्रेरणादायी रचनाकार बनाता है।

अनुक्रमणिका

ग़ज़ल 1

'अब वो ज़माना गया' 2

शक्ति का स्वरूप 3

स्वाभिमान की ज्वाला 4

आँगन की अस्मिता 5

नई राहें, नया अंबर 6

संघर्ष से शिखर तक 7

राष्ट्र की शक्ति—नारी 8

मर्यादा की शक्ति 9

सृजन की अधिष्ठात्री 10

आधुनिकता की अंधी दौड़ 12

घनाक्षरी छंद 13

नारी में नवदुर्गा 14

सुशासन और न्याय की अधिष्ठात्री 15

संस्कारों का ढहता दुर्ग 16

आधुनिकता का छद्म और संस्कृति का सत्य 17

भारतीय संस्कृति का अक्षुण्ण गौरव 18

शक्ति का षोडश श्रृंगार 20

बेटियाँ स्वयं में पूर्ण हैं ! 22

गीतिका 23

स्वयं की राह तुम बनो 24

मेरा मान, मेरा आसमान 26

सृष्टि का श्रृंगार है बेटी 28

जड़ों से कटी पहचान 29

गीत...30
आधुनिकता का द्वंद्व...31
नारी का आत्म-सम्मान...32
अपराजेय चेतना 34
न्याय की दीप्ति..35
श्रृंगार ही शस्त्र है..37
कविता..38
मैं लिखती हूँ...39
स्त्री हो तुम! 41
'उड़ान और आधार' 42
इश्क़ प्रेम की बात ! 43
अश्रु: शक्ति का अभिषेक...44
भ्रमित आधुनिकता: मुखौटा और यथार्थ 46
महारानी का उद्घोष 47
आजादी: एक अधूरा सवाल 48
अहिल्या: लोकमाता का शाश्वत तेज 51
पद्मिनी: स्वाभिमान की पवित्र ज्वाला 52
अजेय चेतना की उड़ान...54
मन की बातें...55
चेतना का विस्तार या व्यसनों का श्रृंगार?...56
आधुनिकता की चकाचौंध और बिसरता पारंपरिक श्रृंगार.............................58
स्वयं में शक्ति, स्वयं ही सारथि 60
नारी ही बने नारी की शक्ति...61
'संस्कारों का चीरहरण'..62
संस्कार बेड़ियाँ नहीं, कवच हैं..63
एक कड़वा सच 64

आकाश की ऊंचाइयों को नापो 65
आधुनिकता की चमक और संस्कारों की कसौटी...................................... 66
वापसी का साहस.. 67
'मैं और तुम, एक ही राह के राही' 68
आत्म-मंथन 70
संस्कृति: हमारी अंतिम ढाल 71
एक विनम्र आह्वान 72
मुक्तक.. 73
अंतिम शब्द नहीं, एक नई शुरुआत... 106
मैं वो मज़बूत उड़ान हूँ।" 107

ग़ज़ल

'अब वो ज़माना गया'

मदद को हाथ जो माँगे, वो अब नारी नहीं होगी,
कि खुद की राह चुनने की उसे लाचारी नहीं होगी।
उड़ानों के लिए उसने गगन अपना बनाया है,
किसी के पंख की अब उसे दरकारी नहीं होगी।
लहू से सींच कर उसने बनाया गुलसिताँ अपना,
महज़ अब फूल की मानिंद वो क्यारी नहीं होगी।
उठी है जब कलम उसकी, ज़माना लिख रही है वो,
सिर्फ़ चूल्हे और चौखट की वफ़ादारी नहीं होगी।
अँधेरों को निगल जाने की हिम्मत पास है उसके,
दिए की लौ की अब बेबस सी लाचारी नहीं होगी।
हिमालय सी अडिग होकर खड़ी है आज वो जग में,
उसे जो तोड़ पाए, ऐसी कोई आरी नहीं होगी।

शक्ति का स्वरूप

नया सवेरा, नई कहानी बनकर उभरी है,
वो घर की लक्ष्मी, अब सयानी बनकर उभरी है।
कंधे से कंधा मिलाकर चलना उसने सीखा है,
त्याग की मूरत थी, अब स्वाभिमानी बनकर उभरी है।
रसोई की महक भी है, दफ़्तर की रफ़्तार भी,
हर मुश्किल राह की वो ज़ुबानी बनकर उभरी है।
संस्कारों की डोर उसने छोड़ी नहीं अब तक,
मगर ज़ुल्म के आगे वो तूफ़ानी बनकर उभरी है।
सिर्फ़ रिश्तों को निभाना ही नहीं है मक़सद,
वो ख़ुद अपनी क़िस्मत की बानी बनकर उभरी है।
वो कोमल है तो क्या, उसमें साहस की रवानी है,
धरा की कोख से अब आसमानी बनकर उभरी है।

स्वाभिमान की ज्वाला

कभी मीरा की भक्ति है, कभी रानी की शक्ति है,
वो नारी है जिसे दुनिया, हृदय से याद रखती है।
महारानी अहिल्या सी, कहीं उसने जलाई लौ,
न्याय की चौखटों पर जो, सदा इबादत लिखती है।
पद्मिनी सा जो जागा था, वो जौहर याद है सबको,
चिता की आग में तपकर, जो मर्यादा को रखती है।
मिट गई पर न झुकने दी, आन अपनी और वतन की,
वो पावन राख भी अब तक, हज़ारों पाठ पढाती है।
लिए ममता की गागर वो, जो टेरेसा सी बन जाए,
पराई पीर में जिसकी, सदा आँखें भी बहती है।
थी लक्ष्मी बाई सी बिजली, कड़कती रण के मैदानों में,
फिरंगी मौत भी जिसकी, चमक से रोज़ डरती है।
बनी सावित्री वो जब भी, मिटाया घोर अंधियारा,
वो शिक्षा की मशालें ले, गगन की ओर बढ़ती है।
न कोमल जान लो उसको, न अब अबला कहो लोगो,
वो अपने आत्म-गौरव पर, स्वयं इतिहास लिखती हैं।

आँगन की अस्मिता

धुएँ से लथपथ आँखों में, वो ख़्वाब पालती है,
वो गाँव की लक्ष्मी है जो, पूरा घर संभालती है।
थकी हारी वो जब खेतों से, घर को लौट आती है,
अहिल्या सी सहिष्णुता, वो अपने भीतर ढालती है।
उसे कमज़ोर मत समझो, घर की चार-दीवारी है,
ज़रूरत हो तो वो चूल्हे से, अंगारे निकालती है।
उसी के जौहर की ख़ातिर, बचा है गाँव का साख अब,
वो हर दिन अपनी इज़्ज़त को, नई आग में उबालती है।
न टेरेसा सी शोहरत है, न रानी सी रियासत है,
मगर बीमार बच्चे के लिए, वो रातें काटती है।
कभी वो पन्ना धाय बनकर, रोटियाँ अपनी त्याग देती,
कभी वो झाँसी वाली बनके, मुश्किल को पछाड़ती है।
भले अनपढ़ हो वो लेकिन, है दुनिया का उसे ज्ञान भी,
वो अपनी बेटियों की क़िस्मत, किताबों से संवारती है।
पसीने की महक उसकी, गुलाबों से भी पावन है,
वो माटी की इबादत को, हक़ीक़त में उतारती है।

नई राहें, नया अंबर

मत्तला

परंपरा की ज़ंजीरें तोड़, अब नया सवेरा लाई है,

वो सिर्फ घर की रौनक़ नहीं, अब ख़ुद अपनी परछाई है।

छंद

दफ़्तर की फ़ाइलों में भी, वो अपना अक्स ढूँढती है,

वो चूल्हे-चौके की सादगी, अब लैपटॉप पर आई है।

नज़रें झुकाकर चलना अब, गुज़रे दौर की बातें हैं,

वो आत्मविश्वास की लहर है, जो तूफ़ानों से टकराई है।

कभी माँ, कभी बेटी, कभी साथी के लिबास में,

उसने हर किरदार को, इक नई गरिमा दिलाई है।

महानगर की इस भीड़ में, वो गुमशुदा कोई नाम नहीं,

उसकी मेहनत, उसके ख़्वाबों ने, अपनी पहचान बनाई है।

लोग कहते थे कमज़ोर है, जो नाज़ुक कली जैसी थी,

उसी ने आज ऊँचे पहाड़ों पर, अपनी विजय पताका फहराई है।

मक्ता

ना समझो उसे अबला तुम, वो शक्ति का अवतार है,

उसने अपने पुरुषार्थ से, अपनी तक़दीर खुद सजाई है।

संघर्ष से शिखर तक

कठिन रास्तों से गुज़रकर, वो मंज़िल पा ही लेती है,
दबाकर पाँव में छाले, वो हँसकर मुस्कुराती है।
कभी समाज की बेड़ियाँ, कभी ये रीत की दीवार,
वो हर इक चोट खाकर, ख़ुद को फौलाद बनाती है।
कहीं भारत की सरहद हो, कहीं पश्चिम का अंबर हो,
वो वर्दी पहन कर अब, मौत को भी आज़माती है।
कलम की धार से अपनी, वो लिखती है नया कल अब,
वही है जो अंधेरों में, शिक्षा की अलख जगाती है।
पसीना खेल के मैदान में, बहता है जब उसका,
तिरंगा झूम उठता है, वो दुनिया को झुकाती है।
हज़ारों मुश्किलों को मात देकर, लक्ष्य तक पहुँची,
वो केवल एक नारी नहीं, नया इतिहास बनाती है।
जहाँ में हर तरफ अब, उसके ही क़दमों की धमक सुनिए,
सृजन हो या सियासत हो, वो हर बाजी जिताती है।

राष्ट्र की शक्ति—नारी

नारी केवल कोमल काया, केवल त्याग नहीं है,
वह रणभेरी की गर्जना है, बुझती आग नहीं है।
अहिल्या सा न्याय यहाँ, फिर जन-जन को दिखलाना है,
सिंहासन पर बैठ कर अब, सुशासन को महकाना है।
महारानी लक्ष्मीबाई सी, जो बाँध कमर में ढाल चले,
राजनीति की चौखट पर, वह बनकर के मिसाल चले।
देश की संसद हो या पंचायत, हर पथ पर अब अधिकार उसका,
सिर्फ वोट की गिनती नहीं, नेतृत्व ही अब आधार उसका।
जो घर की चौखट लाँघ कर, ऊँचे शिखर को छूती है,
सत्य और संकल्प के बल पर, वह भविष्य को बुनती है।
कलम भी उसकी, नीति भी उसकी, और साहस उसका अपना है,
नारी के नेतृत्व में ही, 'भारत' का पूर्ण सपना है।

मर्यादा की शक्ति

मर्यादा की जो देहरी है, वो लांघना स्वीकार नहीं,
पर अबला बनकर घुट-घुट जीना, नारी का संस्कार नहीं।
वो नव-युग की उजियारी है, पर जड़ों से जुड़ी हुई,
उसकी प्रगति में संस्कृति का, कहीं भी तिरस्कार नहीं।
हाथों में यदि शास्त्र लिए हैं, तो शस्त्रों का भी ज्ञान उसे,
बिना धर्म के जो हो अर्जित, वो विजय का अधिकार नहीं।
सीता सी शुचिता मन में है, दुर्गा सा तेज़ ललाटों पर,
केवल तन का प्रदर्शन ही, नारी का श्रृंगार नहीं।
कुल की मान-प्रतिष्ठा है वो, घर की वो ही नीव भी है,
बिना प्रेम और करुणा के, चलता ये संसार नहीं।
शिक्षित हो, सामर्थ्यवान हो, छू ले अंबर की ऊँचाई,
पर भूल जाए जो मात-पिता को, वो शिक्षा का सार नहीं।

सृजन की अधिष्ठात्री

धरा पर जो उतरती है, नया संसार बुनती है,
लहू से सींच कर अपने, वो ही आकार बुनती है।
न केवल देह का सृजन, कला भी उसकी दासी है,
वो मिट्टी के खिलौनों में, नया विस्तार बुनती है।
कभी संगीत की सरगम, कभी शब्दों की मर्यादा,
वो अपनी लेखनी से ही, नए संस्कार बुनती है।
उसे कमतर न आंकें, वो ही शक्ति है, विधाता है,
शून्य के मौन आँगन में, वो ही झंकार बुनती है।
भले आधुनिक हो कितनी, न भूले धर्म और ममता,
सलीके से वो रिश्तों का, हसीं दरबार बुनती है।
सहनशीलता का गहना, उसे कमज़ोर मत कहना,
वो चुप रहकर ही तूफानों, की यहाँ हार बुनती है।

ग़ज़ल : नारी का नव युग

अब नारी मौन नहीं, स्वर की पहचान है,
शिक्षा के दीप से जगमग हर विधान है।
देहरी जो लांघी तो इतिहास जाग उठा,
उसकी उड़ान में ही नया आसमान है।
लेखनी हो या तकनीक, संसद हो या विज्ञान,
हर क्षेत्र में आज उसका ही सम्मान है।
आर्थिक स्वावलंबन ने दी निर्णय की धार,
अब जीवन-पथ पर उसका अपना संधान है।
परंपरा की जड़ में आधुनिकता का फूल,
वह संस्कृति भी है और नव निर्माण है।
कानून बने, अधिकार मिले, पर सच यही,
मानस बदले बिना अधूरा अभियान है।
यह युग गवाह है नारी के नव उत्थान का,
वह शक्ति भी है, संवेदना की मुस्कान है।

आधुनिकता की अंधी दौड़

चमकती रोशनी, ऊँची उड़ानें साथ ले आईं,
मगर ये कैसी आज़ादी? ख़लाएँ साथ ले आईं।
नज़र आती है जो 'मॉडर्न', वो चेहरे पढ़ के तो देखो,
धुएँ के छल्ले लब पर, कुछ दुआएँ साथ ले आईं।
एक हाथ में सिगरेट, दूजे में साक़ी का प्याला,
तरक़्क़ी अपने दामन में बलाएँ साथ ले आईं।
नज़ाकत और हया का जो कभी गहना पहनती थीं,
वो अब बेबाकियों की सब सज़ाएँ साथ ले आईं।
शहर की भीड़ में जो खो गई है सादगी उनकी,
दिखावे की नई-नई सी अदाएँ साथ ले आईं।
वो मर्यादा, वो संस्कार, वो घर की मुहब्बत भी,
हवा-ए-मग़रिब (पश्चिमी हवा) अपने संग जफ़ाएँ साथ ले आईं।
मिटाकर अस्मिता अपनी, बनी हैं आज की नारी,
शराब-ओ-नशा, रूह की बस ख़ताएँ साथ ले आईं।

घनाक्षरी छंद

नारी में नवदुर्गा

शैलपुत्री सी अडिग, ध्येय पथ पर खड़ी,
ब्रह्मचारिणी सी तप, त्याग में है रमी हुई।
चंद्रघंटा बन सधे, चित्त की एकाग्रता को,
कुष्मांड सी सृष्टि की, शक्ति में है जमी हुई।।
स्कंदमाता बन पाले, भावी पीढ़ियों के स्वप्न,
कात्यायनी ओज बन, दुष्टों पर तनी हुई।
कालरात्रि रूप धर, संकट को भस्म करे,
महागौरी सी शुचिता, रग-रग सनी हुई।।
सिद्धिदात्री बन पूर्ण, करती संकल्प सब,
नारी में ही छिपी देखो, नौ कलाएँ दिव्य हैं।
आधुनिकता के मोह, पाश को विच्छेद करे,
संस्कृति की रक्षा हेतु, साक्षात् भव्य है।।

सुशासन और न्याय की अधिष्ठात्री

नीति की प्रणेता बनी, न्याय की विजेता बनी,
धर्म की सचेत धार, सत्य को जगाती हो।
पक्षपात-हीन मति, अचल-अटल गति,
लोक-हित साधना में, प्राण को लगाती हो।।
दंड की कराल शक्ति, भ्रष्ट का विनाश करे,
स्वच्छता प्रशासन की, कीर्ति तुम गाती हो।
भेद-भाव शमन को, समता के वमन को,
शास्त्र और अस्त्र थाम, न्याय को सजाती हो।।
विदुषी प्रबुद्ध तुम, राष्ट्र की समृद्धि तुम,
सृष्टि के विधान बीच, वर्चस्व बढ़ाती हो।
भयमुक्त राहें हों, सुशासन की बाहें हों,
त्याग और तप से ही, नूतन युग लाती हो।।

संस्कारों का ढहता दुर्ग

शास्त्र के सुवचनों में, दो कुलों की तारण है,
बेटी ही तो मान और, आन का ही नाम है।
पीहर की लाड़ली जो, ससुराल लक्ष्मी बने,
त्याग की मूरत वही, सुख का विश्राम है।
किन्तु हाय आज देश, खुले वृद्धाश्रम क्यों,
मानवीयता का यहाँ, होता कत्लेआम है।
पाल-पोस बड़ा किया, निज रक्त बूँदों से ही,
उनका ही शेष बचा, आज वनवास है। १।
स्वार्थ के वशीभूत हो, मति भई मन्द सबकी,
बहुएँ जो आतीं घर, भूलतीं विधान हैं।
जिनके आशीष फल, फले-फूले गृह-आँगन,
उनको ही मान बोझ, करतीं अपमान हैं।
कैसी आधुनिकता ये, कैसी ये प्रगति हुई,
नीड़ से ही दूर किए, संस्कृति के प्राण हैं।
शिक्षा में न कमी कोई, कमी संस्कारों की है,
भटके हुए हैं लोग, भूले निज ज्ञान हैं। २।
देव-तुल्य पूज्य जो थे, घर के विधाता वही,
आज कोनों में पड़े, मौन सिसकते हैं।
भूल गए पुत्र-वधू, सेवा ही है परम धर्म,
स्वयं के भविष्य से ही, आज वे छटकते हैं।
जागो ओ समाज आज, जड़ को बचा लो तुम,
वृद्धों के नयनों में, जो अश्रु खटकते हैं।
मातृ-पितृ सेवा बिना, देव-अर्चना है व्यर्थ,
अंत में तो सब यहीं, आकर भटकते हैं। ३।

आधुनिकता का छद्म और संस्कृति का सत्य

फैशन की आंधी चली, भटकी है सब गली,
पश्चिम की चकाचौंध, मन में समाई है।
क्लब की वो रौनकें, जाम का नशा है जहाँ,
उसको ही नारी आज, प्रगति बताई है।
तन पे हैं वस्त्र अल्प, मर्यादा को त्याग दिया,
स्वच्छंदता की डगर, उसने अपनाई है।
किंतु यह भूल गई, आधुनिकता का अर्थ,
संस्कारों की चिता पे, ही खुशियाँ सजाई है।
पढ़ना-लिखना भली, ऊँचे शिखर चढ़ो तुम,
ज्ञान के प्रकाश से ही, घर जगमगाता है।
निर्णय की शक्ति धार, जग को दिशा दिखाओ,
साहस तुम्हारा देख, काल थर्राता है।
किंतु मदिरा का पान, सभ्यता नहीं है कहीं,
संस्कृति का लोप देख, मन घबराता है।
जड़ें जो कटाओगी तो, वृक्ष सूख जाएगा ही,
अंधा अनुकरण सदा, पतन ही लाता है।
भारत की बेटी तुम, गार्गी और सीता तुम,
झांसी वाली रानी का, तुम में ही अंश है।
शील और शौर्य का, ये पावन संगम है जो,
इसी से सुरक्षित आज, भारत का वंश है।
अभिमान से कहो कि, हम हैं सनातनी सदा,
आधुनिक होना नहीं, धर्म का विध्वंस है।
सभ्य रहो, भव्य रहो, गौरव को संजोए रखो,
तभी तो सफल यह, मनुज-प्रशंसा है।

भारतीय संस्कृति का अक्षुण्ण गौरव

त्याग की तू प्रतिमूर्ति, शक्ति की तू दिव्य ज्योति,
संस्कृति का हार तेरे, कंठ का श्रृंगार है।
भूल न तू अपनी जड़ें, पाश्चात्य की चकाचौंध में,
ऋषियों की पावन धरा, का तू ही आधार है।
ममता की छाँव बने, साहस की धार बने,
शील और मर्यादा का, तुझ पर ही भार है।
पूर्वजों के पुण्य फल, संचित हैं तुझ ही में,
तेरा स्वाभिमान ही तो, भारत का सार है।
होली के वे रंग प्यारे, दिवाली के दीप न्यारे,
रक्षा का वो पावन सूत्र, बहना का प्यार है।
तीज और छठ व्रत, आस्था के महाकुंभ,
सावन की पींगों में जो, झूलता संसार है।
भूल के ये उत्सव तू, रिक्त न कर जीवन को,
त्योहारों की गरिमा में, खुशियों का द्वार है।
संस्कृति की रक्षा हेतु, आगे तुझे आना होगा,
तेरी ही हथेली पर तो, रंगा ये त्यौहार है।
माथे पर की बिंदिया ये, त्याग का प्रतीक बने,
पाँवों की ये पायल तो, संयम की झंकार है।
कंगन की खनक में भी, छिपी हुई दृढ़ता है,
साड़ी के आंचल में ही, संस्कारों का विस्तार है।
आधुनिकता के नाम, नग्नता को न अपना तू,
सौम्यता की देहरी ही, तेरा अधिकार है।
नारी के ही शील से है, घर-आँगन स्वर्ग बनता,

तेरा दिव्य रूप ही तो, जग का उपकार है।
आने वाली पीढ़ियों को, क्या तू सौंप जाएगी?
प्रश्न ये खड़ा है सामने, गूँजता पुकार है।
लोरी में सुना तू उन्हें, वीरों की अमर कथा,
मातृभूमि के लिए जो, मर मिटने को तैयार है।
उठ नारी ! जाग नारी ! अपनी पहचान रख,
संस्कृति की ज्योति जला, मिटता अंधकार है।
तू ही 'भारती' है और, तू ही 'माँ भवानी' भी है,
तेरे हाथ में ही अब तो, राष्ट्र की पतवार है।

शक्ति का षोडश श्रृंगार

बिंदिया ललाट सोहे, दिव्य बोध की प्रतीक,
त्रिनेत्र की ज्वाला बन, शत्रु को जलाती है।
सिंदूर की रेख मानो, रक्त की विजय गाथा,
त्याग और तप से ही, राष्ट्र को बचाती है।
काजल की धार धार, पैनी तलवार सी है,
कुदृष्टि के दानवों को, पल में मिटाती है।
नथुनी की गरिमा है, स्वाभिमान की मशाल,
सांसों के वेग से ही, क्रांति को जगाती है। ॥ 1 ॥
कर्णफूल मन्त्र बनें, वेद की ऋचाएँ गूँजें,
सतर्क श्रवण शक्ति, भेद को चबाती है।
कंठहार शोभित है, जैसे शब्द-ब्रह्म शस्त्र,
तर्क की कमान चढ़ी, सत्य को जिताती है।
बाजूबंद बंधे वीर, भुजाओं के बल बन,
निर्बल के रक्षण की, शपथ उठाती है।
चूड़ियाँ कलाई में है, न्याय का कठोर नाद,
अन्याय के किलों को, खनक से ढहाती है। ॥ 2 ॥
मुद्रिका अंगुष्ठ साधे, संधान की एकाग्रता,
लक्ष्य की अचूकता का, मर्म समझाती है।
कमरबंद कसे कसी, कर्म की अटलता को,
उत्तरदायित्वों का ये, भार को उठाती है।
मेहंदी रची है कर, शोणित की साखी बन,
बलिदानी माटी की ये, सुगंध फैलाती है।
आरसी दिखाती दर्पण, सत्य के स्वरूप वाला,

छद्म वेष धारी का मुखौटा गिराती है। ॥ 3 ॥
पायल की रुनझुन, रणभेरी का उद्घोष,
पग-पग धरते ही, धरती कांप जाती है।
बिछिया अंगुलियों में, अनुशासन का नियम,
मर्यादा की लक्ष्मण-रेखा खींच जाती है।
इत्र सा चरित्र महके, लोक के कल्याण हेतु,
वेणी नागपाश बन, काल को डराती है।
सोलह श्रृंगार नहीं, शस्त्रों का विधान है ये,
नारी जब जागे चंडी, काल बन जाती है। ॥ 4 ॥

बेटियाँ स्वयं में पूर्ण हैं !

त्याग की मूरत हैं, शक्ति की ज़रूरत हैं,
जग में उजाल भरें, ऐसी वे मशाल हैं।
ममता की धार भी हैं, रण की पुकार भी हैं,
संकट के काल में ये, दुर्गा की ढाल हैं॥
क्यों कहें कि बेटा बन, बोझ तू उठाएगी ये,
बेटी बन पिता का ये, बनती संबल हैं।
सेवा में सुजाता सी, साहस में झाँसी रानी,
कोमल है देह किंतु, इरादे अटल हैं॥
कुल की मर्यादा बन, फर्ज़ को निभाती सदा,
आँखों में उमंग लिए, छूती आसमान हैं।
बेटे से न कम कोई, रूप है ये लक्ष्मी का,
त्याग और तप की ये, जीती पहचान हैं॥
मान और शान हेतु, बेटा न बनाओ इन्हें,
बेटी होना स्वयं में ही, गौरव महान है।
सृष्टि की ये धुरी हैं, पूर्णता की पूरी हैं,
भारत की बेटियों में, बसता जहान है॥

गीतिका

स्वयं की राह तुम बनो

न मांगो पंख औरों से,
स्वयं परवाज़ बन जाओ,
दबी जो सदियों से दिल में,
वही आवाज़ बन जाओ।
लिखा है नाम जिसका त्याग की हर एक इबारत पर,
उसी के हाथ में अब तुम,
नया आगाज़ बन जाओ।
न मांगो पंख औरों से,
स्वयं परवाज़ बन जाओ।
कभी सीता, कभी कुन्ती,
कभी तुम द्रोपदी ठहरी,
मगर अब अपने अधिकारों का,
तुम अंदाज़ बन जाओ।
न मांगो पंख औरों से,
स्वयं परवाज़ बन जाओ।
जरूरत क्या कि तुमको कांच की सूरत में ढालें सब,
जो तोड़े हर जंजीरों को,
वही फौलाद बन जाओ।
न मांगो पंख औरों से,
स्वयं परवाज़ बन जाओ।
तुम्हारे मौन ने पाला, यहाँ कई असुर-वंशों को,
उठो अब काल के माथे का,
तुम ही साज बन जाओ।

न मांगो पंख औरों से,
स्वयं परवाज़ बन जाओ।
भरोसा खुद पे जिस दिन हो, धरा भी सर झुका देगी,
स्वयं की बंद किस्मत का,
तुम्ही आगाज़ बन जाओ।
न मांगो पंख औरों से,
स्वयं परवाज़ बन जाओ।

मेरा मान, मेरा आसमान

झुकाकर शीश जीना अब,
मुझे स्वीकार ही कब है?
मेरे आत्म-सम्मान का,
अपना ही एक मज़हब है।
मैं केवल देह की मूरत,
नहीं हूँ सिर्फ़ इक छाया,
लहू में दौड़ता मेरे,
पूर्वजों का ही गौरव है।
झुकाकर शीश जीना अब,
मुझे स्वीकार ही कब है?
बुझा दो तुम भले दीपक,
अंधेरों की बिसातें बिछा,
मेरे संकल्प की ज्वाला,
मेरा अपना ही सूर्यब है।
झुकाकर शीश जीना अब,
मुझे स्वीकार ही कब है?
न आभूषण की चाहत है,
न श्रृंगारों का लालच अब,
कि मर्यादा की रेखा ही,
मेरा सबसे बड़ा ज़ेब है।
झुकाकर शीश जीना अब,
मुझे स्वीकार ही कब है?
उड़ा लो तुम हंसी मेरी,

गिरा दो तर्क की बिजली,
मेरा ये मौन ही कल का,
प्रलयकारी सा उत्सव है।
झुकाकर शीश जीना अब,
मुझे स्वीकार ही कब है?
कहाँ तक तुम मिटाओगे,
अमिट ये नाम धरती पर,
मैं आदि हूँ, मैं अंत हूँ,
मैं ही साक्षात् वैभव है।
झुकाकर शीश जीना अब,
मुझे स्वीकार ही कब है?

सृष्टि का श्रृंगार है बेटी

खिलती हुई कलियों का पावन द्वार है बेटी,
सूखे हुए आंगन की पहली बौछार है बेटी।
जिस घर की दहलीज़ पे थिरकें इसके पायल,
उस घर के लिए ईश्वर का उपहार है बेटी।।
नहीं ये कोमल तंतु है, ये तो शक्ति का संगम है,
तपती हुई दुपहरी में, ये शीतल मंद सरगम है।
जहाँ ये मुस्कुराती है, वहीं उत्सव पनपते हैं,
धरा के मौन अधरों का, मधुर झंकार है बेटी।।
पिता का मान है इसमें, माँ की परछाईं बसती है,
ये वो खुशबू है जो हरदम, हवाओं संग हँसती है।
बिना इसके अधूरा है, सृजन का हर नया सपना,
पूरी कायनात का ही, सकल सार है बेटी।।
संस्कारों की तुलसी है, ये संयम का सवेरा है,
मिटा दे जो तिमिर सारा, ये वो उजला बसेरा है।
बने जब दीप ये घर का, तो रोशन वंश होता है,
भविष्य के क्षितिजों का, नया विस्तार है बेटी।।

जड़ों से कटी पहचान

ओढ़ के पराया अक्स, निज आभा भूल बैठी है,
पाने को कंचन नया, तू अपनी थाती भूल बैठी है।
सभ्यता की ओट में, जो रूह का शृंगार था तेरा,
तू होकर आधुनिक, वो पावन माटी भूल बैठी है।।
दौड़ती है तू वहां, जहाँ बस कांच के घर हैं,
मृगतृष्णा की धूप में, झुलसते तेरे पर हैं।
भूलकर चन्दन की महक, जो पूर्वजों ने सौंपी थी,
तू कृत्रिम इत्र की, झूठी परिपाटी भूल बैठी है।।
स्वतंत्रता का अर्थ क्या, बस देह का प्रदर्शन है?
या कि अपने मान का, गम्भीर आत्म-मंथन है?
जो शील तेरा कवच था, जो गरिमा तेरा गहना थी,
तू पश्चिम के मोह में, वो मर्यादा-पाटी भूल बैठी है।।
शिखर को छू मगर, पैरों तले ज़मीन तो रख,
नया तू सीख ले, पर पुराना यक़ीन तो रख।
वजूद तेरा सिमट जाएगा, गर जड़ें सूख जाएंगी,
तू अपनी संस्कृति की, अनमोल घाटी भूल बैठी है।।

गीत

आधुनिकता का द्वंद्व

क्षितिज को छूना लाज़मी है, पर ज़मीं को मत भुला देना,
उड़ानें शौक़ से भरना, पर मकां को मत जला देना।
पढ़ो तुम शास्त्र भी, और थाम लो तुम आज अंबर को,
बनो विज्ञान की भाषा, मगर जड़ों को मत गंवा देना।
क्षितिज को छूना लाज़मी है, पर ज़मीं को मत भुला देना।
ए-जाम हाथों में, लबों पर धुएँ के ये छल्ले,
इन्हीं झूठी नुमाइश में, कहीं खुद को न मिटा देना।
क्षितिज को छूना लाज़मी है, पर ज़मीं को मत भुला देना।
जिसे संस्कार कहते थे, वही था ढाल नारी की,
दिखावे की आज़ादी में, न मर्यादा को दफ़ना देना।
क्षितिज को छूना लाज़मी है, पर ज़मीं को मत भुला देना।
प्रगति का अर्थ यह तो नहीं, कि पश्चिम की नकल कर लें,
सभ्यता की जो धरोहर है, उसे तुम मत लुटा देना।
क्षितिज को छूना लाज़मी है, पर ज़मीं को मत भुला देना।
अगर संस्कृति ही मर जाए, तो फिर क्या शेष नारी में?
महल की चकाचौंध में, न घर की लौ बुझा देना।
क्षितिज को छूना लाज़मी है, पर ज़मीं को मत भुला देना।

नारी का आत्म-सम्मान

(धुन: "फूल तुम्हें भेजा है खत में...")

शक्ति लिखी है मैंने तुममें,
हार नहीं स्वीकारना,
स्वयं को पहचानो ओ नारी,
तुम हो सृजन का सारना।
शक्ति लिखी है मैंने तुममें...

दुनिया ने तुमको घेरा है,
मर्यादा की जंजीरों में,
पर तुम ही हो रंग भरने वाली,
इस जग की तस्वीरों में।
मत रुको अब तुम किसी के लिए,
अपना पथ खुद ही सम्हारना,
शक्ति लिखी है मैंने तुममें,
हार नहीं स्वीकारना।
नयनों में तुम स्वप्न सजाओ,
नभ छूने का साहस लो,
जो भी बाधा आए सम्मुख,
तुम उससे लड़ने का यश लो।
केवल कोमल मन ही नहीं तुम,
रण में चंडी की धारना,
शक्ति लिखी है मैंने तुममें,

हार नहीं स्वीकारना।
तुम हो विवेक,
तुम ही हो विद्या,
तुम हो शक्ति का ही रूप,
तुम्हीं से शीतल चाँदनी बिखरे,
तुम्हीं हो प्रखर सुनहरी धूप।
अबला कहने वालों को तुम,
अपना सामर्थ्य दिखाना,
शक्ति लिखी है मैंने तुममें,
हार नहीं स्वीकारना।
कलम उठाओ अपनी किस्मत,
तुम खुद ही अब लिख देना,
अंधियारे को ज्ञान की लौ से,
हर कोने में सिख देना।
शिक्षित होकर तुम ही बदलोगी,
पीढ़ियों का ये गुज़ारना,
शक्ति लिखी है मैंने तुममें,
हार नहीं स्वीकारना।
हाथ तुम्हारे काम के साथी,
तुम न किसी पर आश्रित हो,
अपने पसीने के मोती से,
खुद ही अब तुम शोभित हो।
स्वावलंबन का गहना पहनकर,
अपना मान निखारना,
शक्ति लिखी है मैंने तुममें,
हार नहीं स्वीकारना।

अपराजेय चेतना

उठो कि तुम समय की एक ओजस्वी पुकार हो,
तुम सृजन का गान हो, तुम क्रांति की धार हो।
न मस्तक झुके कभी, न पग तुम्हारे डगमगाएँ,
तुम स्वयं अपनी नियति, तुम स्वयं ही संस्कार हो।।
धमनियों में संचरित है पूर्वजों का शौर्य बल,
दृष्टि में है ध्येय निश्चित, मन है गंगा सा विमल।
बाधाओं के तुषार में तुम सूर्य बन कर प्रकटो,
तुम्हारी दृढ़ता से पिघल जाए पर्वतों का हिम-पटल।
तुम न अबला, न विवश, तुम शक्ति का अवतार हो,
उठो कि तुम समय की एक ओजस्वी पुकार हो।।1।।
द्वंद्व के उस तिमिर में तुम विवेक का दीप जलाओ,
सत्य की कसौटी पर तुम स्वयं को परख पाओ।
तुम्हारे निर्णय की गूँज से दसों दिशाएँ स्पंदित हों,
मौन को तुम शब्द दो, और शून्य को आकार दो।
तुम धरा का धैर्य हो, तुम व्योम का विस्तार हो,
उठो कि तुम समय की एक ओजस्वी पुकार हो।।2।।
इतिहास के हर पृष्ठ पर अंकित तुम्हारा नाम हो,
तुम संकल्प की सिद्धि हो, तुम पुरुषार्थ का आयाम हो।
तुम कोमल हो कर भी वज्र सी संहारक बनो,
अन्याय के विरुद्ध जो उठे, तुम वह प्रबल हुंकार हो।
तुम विजय का तिलक हो, तुम शौर्य का श्रृंगार हो,
उठो कि तुम समय की एक ओजस्वी पुकार हो।।3।।

न्याय की दीप्ति

तुम नीति-पुंज की आभा हो,
तुम न्याय-मार्ग का सुदृढ़ चरण,
तुम्हारे हाथों में सुरक्षित है,
इस राष्ट्र का पावन सुशासन।
न पक्षपात का मोह हो,
न स्वार्थ का कोई जाल हो,
तुम न्याय की वह प्रखर वाणी,
जो युग-युगों तक ढाल हो।!1!!
दृष्टि में नियम का सम्मान सर्वोपरी रहे,
अनुशासन की उस परिधि में,
लोक-कल्याण की सरिता बहे।
छल-छद्म के उस व्यूह को,
तुम सत्य के बल से काटो,
जो तिमिर फैला है जगत में,
उसे ज्ञान की रश्मि से बाँटो।
तुम कुशलता का मान हो,
तुम व्यवस्था का ही व्याकरण,
तुम्हारे हाथों में सुरक्षित है,
इस राष्ट्र का पावन सुशासन।!2!!
तुलना का पलड़ा हो बराबर,
न कोई दीन, न कोई विशेष,
तुम्हारी न्याय-संहिता में,
मिट जाए हर संताप-क्लेश।

वज्र सी कठोर बनो तुम,
अधर्म के प्रतिशोध में,
पर पुष्प सी कोमल रहो,
पीड़ित के प्रति प्रबोध में।
तुम धर्म की मर्यादा हो,
तुम विवेक का ही समर्पण,
तुम्हारे हाथों में सुरक्षित है,
इस राष्ट्र का पावन सुशासन।
अहिल्या की तुम चेतना हो,
न्याय की तुम ही मिसाल हो,
तुम वर्तमान की शक्ति हो,
तुम भविष्य की उज्ज्वल मशाल हो।
सत्यमेव जयते का मंत्र,
तुम्हारे कर्मों में ध्वनित हो,
जिस ओर भी तुम्हारे पग बढ़ें,
वह पथ स्वयं ही पुनीत हो।
तुम लोकतंत्र की गरिमा हो,
तुम सुशासन का संभरण,
तुम्हारे हाथों में सुरक्षित है,
इस राष्ट्र का पावन सुशासन।!3!!

श्रृंगार ही शस्त्र है

सज रही है आदि-शक्ति, नूतन एक विधान में,
आज श्रृंगार शस्त्र बनेगा, रण के नव अभियान में।
तन पर स्वर्ण, मन में संकल्प, नयनों में अंगार है,
नारी का यह रूप आज, साक्षात शक्ति-विस्तार है।
भाल पर चमके जो बिंदी, वह तृतीय नयन की ज्वाला है,
शीश का सिंदूर रक्त-शपथ, जैसे कोई अग्नि-माला है।
टीका नहीं, यह सुदर्शन का ललाट पर प्रकटीकरण है,
खुले केश हैं रणचंडी के, काल का जैसे आवरण है।
नयनों का कजरारा अंजन, शत्रुओं को भ्रमित करता है,
नासिका की नथ का अनुशासन, वायु का वेग भरता है।
कानों के कुंडल सुनते हैं, निर्बलों की दबी पुकार को,
मुस्कान नहीं यह बिजली है, जो दहन करे अंधकार को।
कंठ का हार है वह मर्यादा, जो प्राणों की रक्षा करती है,
बाहुपाश की शक्ति भुजाओं में, पौरुष का बल भरती है।
खनक नहीं यह चूड़ियों की, रणभेरी का उद्घोष है,
अँगुलियों की मुद्रिकाएँ, न्याय का जीवंत जोश है।
कटि-तट पर बँधा स्वर्ण-बंध, धैर्य का प्रबल प्रमाण है,
पैरों की पैंजनी झंकार नहीं, क्रांति का बढ़ता गान है।
उँगलियों की बिछिया मर्यादित, धरती से संबंध बताती है,
चरणों की लाल महावर, विजय-रक्त की गाथा सुनाती है।

कविता

मैं लिखती हूँ

मैं लिखती हूँ—
कि सोई हुई चेतना को फिर से झकझोर सकूँ,
तुम्हारी असीमित शक्ति को, शब्दों की डोर दे सकूँ।
मैं लिखती हूँ कि तुम केवल देह नहीं, एक विचार हो,
सृजन के महाकाव्य का, तुम ही तो आधार हो।।
मैं लिखती हूँ—
क्योंकि मुझे स्वीकार नहीं तुम्हारा ये 'छद्म' आधुनिक होना,
पाश्चात्य की चकाचौंध में, अपना ही अस्तित्व खोना।
आधुनिकता का अर्थ, संस्कारों की बलि चढ़ाना नहीं,
सिर्फ बाहरी आवरण बदलना, आगे की ओर बढ़ना नहीं।
मैं लिखती हूँ कि तुम चमक तो चुनो, पर अपनी मौलिकता न गँवाओ,
आकाश को ज़रूर छुओ, पर अपनी जड़ों को न बिसराओ।।
मैं लिखती हूँ—
कि तुम्हें तुम्हारी खोई हुई 'थाती' याद दिला सकूँ,
अपनी संस्कृति के चंदन की, वो पावन महक पिला सकूँ।
जहाँ शील ही शस्त्र है, और मर्यादा ही मान है,
उसी भारतीय गरिमा में, छिपा तुम्हारा गौरव-गान है।
मैं लिखती हूँ कि तुम पंख फैलाओ, मगर दिशा का ज्ञान रहे,
तुम्हारी उड़ान में, तुम्हारे पुरखों का भी सम्मान रहे।।
मैं लिखती हूँ—
कि तुम्हारी आवाज़, युगों की चुप्पी को तोड़ दे,
तुम्हारी लेखनी, समय की धारा को मोड़ दे।
'पंख तेरे हैं'—ये बताने को कि गगन तेरा दास है,

मगर याद रहे, तेरी संस्कृति ही तेरा सच्चा वास है।
इसलिए मैं लिखती हूँ...
ताकि तुम 'शक्ति' बनो, 'प्रदर्शनी' नहीं,
ताकि तुम 'सभ्यता' बनो, केवल 'आधुनिक' नहीं।।

स्त्री हो तुम!

तुम सृष्टि का आदि काव्य, प्रकृति का चरम विस्तार हो,
सिर्फ देह की इकाई नहीं, तुम चेतना का सार हो।
स्वयं पर गर्व करो कि तुम विधाता की श्रेष्ठ कृति हो,
अमृतमयी ममता भी तुम, और प्रलय की आकृति हो।।
तुम 'क्षमा' की प्रतिमूर्ति, तुम 'धैर्य' का गहरा सिंधु हो,
भले ही सारा नभ तुम्हारा, पर तुम मर्यादा का बिंदु हो।
तुम्हारे भीतर संजोया है, संस्कृति का अनमोल कोष,
तुममें ही छिपा है कोमल प्रेम, और तुममें ही रण-उद्घोष।
गर्व करो कि तुम 'जननी' हो, तुम ही जीवन का आधार हो,
तुमसे ही घर तीर्थ बनता, तुम ही 'कुल' का संस्कार हो।।
न ढूंढो अपना मान कहीं बाहर, तुम स्वयं में एक प्रतिमान हो,
न हारो तुम अपनी अस्मिता, तुम वेदों का पावन ज्ञान हो।
आधुनिकता की दौड़ में, मत भूलना अपना आत्म-सम्मान,
कटे हुए पंखों से नहीं, जड़ों से जुड़कर ही बनेगी पहचान।
तुम वह दीप हो, जो आँधियों में भी जलना जानती हो,
तुम वह शक्ति हो, जो पत्थरों को भी पालना जानती हो।।
नारी हो! तुम्हारे होने से ही ये धरा सुरक्षित है,
तुम्हारे सधे हुए कदमों से ही, हर परंपरा आरक्षित है।
तुम सरस्वती का विवेक हो, तुम लक्ष्मी का वैभव-रूप,
तुम शीतलता की चाँदनी, तुम संघर्षों की प्रखर धूप।
उठो! कि तुम्हें अब संस्कारों का नया गगन पाना है,
स्त्री होना 'सौभाग्य' है—यही जग को अब बताना है।।

'उड़ान और आधार'

उड़ान पंखों से नहीं,
संकल्पों से होती है,
मगर याद रहे,
हर ऊँची उड़ान की एक ज़मीन होती है।
गगन को जीतना गौरव है,
पर मिट्टी को भूलना पतन,
वही पक्षी सुरक्षित है,
जिसकी जड़ें संस्कार में होती हैं।"

इश्क़ प्रेम की बात !

इश्क़ प्रेम की बात नहीं लिख पाऊँगी ,
लिखूँगी जीवन प्रीत नहीं लिख पाऊँगी ।
महिलाओं पर लिख्खूँगी गाऊँगी मैं ,
मैं दरबारी गीत नहीं लिख पाऊँगी ।।
कब तक रोने वाली हो ये बतला दो,
क्या कुछ सहने वाली हो ये बतला दो ।
बहुत हुआ हांथों में अब हथियार धरो,
रण में कब उतरोगी तुम ये बतला दो ।।
विरह वेदना के स्वर गाना बंद करो,
कमजोरी अपनी बतलाना बंद करो ।
शक्ति से ही तो रूप शक्ति का जीवित है,
स्वयं सुकोमल बस कहलाना बंद करो ।।

अश्रु: शक्ति का अभिषेक

यह जो चक्षु-कोर से ढलका,
वह केवल जल की धार नहीं,
तेरी करुणा का साक्ष्य है यह,
यह निर्बलता का भार नहीं।
जैसे तप्त धरा को शीतल,
अंबर का नीर बनाता है,
वैसे ही तेरा हर आँसू,
तेरे साहस को सजाता है।
रो लेना कमज़ोरी कैसी?
यह तो अंतर्मन का धोना है,
कठोर हृदय पत्थर होते,
कोमल का काम ही रोना है।
पर याद रहे! इन बूंदों में,
एक प्रलयंकारी शक्ति भी है,
अन्याय के सम्मुख बहें नहीं,
यह स्वाभिमान की भक्ति भी है।
जो रो न सके, वह लड़ न सके,
संवेदना ही मूल है जीवन का,
अश्रु तो वह पावन जल है,
जो तप बढ़ाता है तेरे मन का।
इसे पोंछकर जब तू उठेगी,
तब दृष्टि और भी साफ़ होगी,
तेरी सिसकी ही कल दुनिया की,

सबसे बड़ी गर्जना होगी।
मत शर्मिंदा हो इन पर तू,
ये तेरे हृदय के मोती हैं,
ये वही बुझाते आग यहाँ,
जो दुनिया भर में होती है।
पर इन्हें व्यर्थ मत बहने दे,
इन्हें संकल्प की धार बना,
अपनी पीड़ा को अस्त्र बना,
अपना ही तू उद्धार बना।

भ्रमित आधुनिकता: मुखौटा और यथार्थ

नारी! तुम शक्ति का स्वरूप थीं, तुम मर्यादा का सार थीं,
तुम संस्कारों की जननी, सृजन का पावन आधार थीं।
किन्तु आज ये कैसा रूप, ये कैसी धुंधली छाया है?
क्या आधुनिकता का अर्थ मात्र, पश्चिम की जूठी माया है?
एक हाथ में सुलगती सिगरेट, धुएँ में उड़ता सम्मान,
दूसरे में मदिरा का प्याला, क्या यही है तुम्हारी पहचान?
शहरी चकाचौंध की अंधी दौड़ में, तुम किसको पछाड़ रही हो?
आज़ादी के मिथ्या अहंकार में, स्वयं को ही उजाड़ रही हो।
अग्नि की पावन लपटें अब, धुएँ के छल्लों में कैद हैं,
जो कण्ठ गाते थे ऋचाएँ, वहाँ अब विषैले शहद हैं।
शराब की हर एक घूँट में, गिरती हुई संवेदना है,
ये प्रगति नहीं प्रिय बहन! ये पतन की मौन वेदना है।
आधुनिक बनो, गगन चूमो, ज्ञान-विज्ञान की बात करो,
रूढ़ियों की बेड़ियाँ तोड़ो, नए युग का नया प्रभात करो।
पर याद रहे, सभ्यता की जड़ें जब सूखने लगती हैं,
तब ऊँची अट्टालिकाएँ भी, मिट्टी में मिलने लगती हैं।
नारी का आभूषण उसका विवेक है, उसका व्यसन नहीं,
ये देह मात्र विलास की वस्तु या मनोरंजन का साधन नहीं।
छोड़ो ये धुएँ का आवरण, ये मदहोशी का उथलापन,
फिर से जागो, फिर से बनो— राष्ट्र के गौरव का दर्पण।

महारानी का उद्घोष

वह केवल अबला नहीं, प्रलय की अंगड़ाई थी,
सिंहासन हिल उठे डरे, जब वह रण में आई थी।
नहीं श्रृंगार की भूखी थी, वह शौर्य का दर्पण थी,
मातृभूमि की वेदी पर, वह पूर्ण समर्पित अर्पण थी।
जब कायरता के साए में, सब रजवाड़े सोए थे,
वह वीर प्रसूता जागी थी, जब स्वाभिमान सब खोये थे।
गंगाधर की मृत्यु शोक को, उसने अस्त्र बनाया था,
दामन फैलाया नहीं कभी, बस शस्त्र उठाना भाया था।
पीठ पर कसी नियति अपनी, और हाथ में नंगी तलवार,
फिरंगियों की छाती पर, वह साक्षात् काल का था प्रहार।
महारानी नहीं, वह भारत के पौरुष का उज्वला प्रमाण थी,
झांसी की मिट्टी का चंदन, और गौरव का सम्मान थी।
ग्वालियर की पहाड़ियों ने, उसकी हुंकार को देखा है,
मिटती हुई आजादी की, अमिट रक्त-रेखा को देखा है।
वह गिरी नहीं, वह अमर हुई, पावक में तपकर कुंदन सी,
मरकर भी जो महक रही, वह पावन पुण्य विलेपन सी।

आजादी: एक अधूरा सवाल

ये जो बात बात पर बेटी बचाओ की बात होती है ,
और बचाई भी जाय तो जीने के लिए पल पल रोतीं है,
जीने के लिए खुल कर तुम भी बेताब हो क्या ?
सुनो बेटी तुम सच में आजाद हो क्या ?
सड़क पर हर राही बेटी का सिपाही बन खड़ा है ,
फिर भी हर बाप को सताता कैसा ये खौफ बड़ा है ,
जो हर गली में शोर करता है आवाज सुनी हु क्या?
सुनो बेटी तुम सच में आजाद हो क्या?
चल रही है बाते बेटा बेटी समान माने जाएंगे ,
बेटियो ने तो छू ली है बेटी के हिस्सो की ऊंचाई,
अब घर बेटे संभाल कर बताएंगे ,
क्यों तुम्हे आज भी ये बाते मजाक लग रही है ,
तुम आज भी उस कैद की शिकार हो क्या ?
सुनो बेटी तुम सचमे आजाद हो क्या ?
कही पायल की झंकार तुम्हे रक्त तो नही ?
सच बताओ बाहर जाने पर मां टोकती तो नही ?
ये जो independent सी नजर आती हो ये सिर्फ ख्वाब है क्या?
पर सुन बेटी तू सच में आजाद है क्या ?
जितनो ने भी घर लक्ष्मी आई है सुना है,
क्या उसने सच में उतनी खुशी से तुम्हें बुना है?
आज भी कोख से बाहर सुरक्षित महसूस करती हो क्या?
सुनो बेटी तुम सच में आजाद हो क्या?
वह बताता है बेटियां खेल खिलाती रहनी चाहिए,

तो अब से सुन लो बेटियों को परियों की सुनी कहानी नहीं चाहिए,
उसको क्यों रोकते हो कि एक राजा घोड़े पर चढ़कर आएगा,
उसको बस इतना बता दो कि किसी के घर जाना है तो सबसे रॉयल एंट्री तुम्हारी होनी चाहिए,
21v सदी में भी तुम शादी का तनाव सहती हो क्या?
सुनो बेटी सच बताओ तुम सच में आजाद हो क्या?
यह फिल्मों में बस है या तुम सच में सपने साकार कर रही हो,
तो फिर गांव में रहकर ख्वाबों को क्यों नहीं आकर दे रही हो,
सच-सच बताओ जो चाहती हो करना वह चाहत पूरी कर रही हो क्या ?
खुद की पसंद का तस्वीर-ए-जिंदगी में रंग भर रही हो क्या?
सुनो बेटी तुम सच में आजाद हो क्या?
तुम्हारा होना ऊंचाइयों पर किसी को खलता तो नहीं,
कभी उससे भी ऊंचा उठ जाओगी यह खौफ पुरुषों में पलता तो नहीं?
छू ना लो कहीं गगन को घबराहट ए मर्द की शिकार हो क्या?
सुनो बेटी तुम सच में आजाद हो क्या?
काम नहीं करना ऑफिस नहीं जाना,
वह एक आदमी का डर तुम्हें रोकता तो नहीं?
जो डरता है तुम्हारी उड़ान से वह तुम्हें टोकता तो नहीं?
अच्छा एक बात बताओ तुम हर जरूरत पर खुद के लिए लड़ी हो क्या?
अन्याय होते देख किसी भी बेटी के साथ कभी उसके साथ खड़ी हो क्या ?
सुनो बेटी तुम सच में आजाद हो क्या?
जो तुम्हें थपकी देकर सुलाता है,
अच्छा वही ना जो तुम्हें हर रोज रुलाता है,
कभी ऐसे असुर से खुद काली बन लड़ी हो क्या?
सुनो बेटी तुम सच में आजाद हो क्या?
वह जिसने यह सब सही है वह तुम्हें बेटी होना सिखाएगी ?

जो खुद के लिए जी ना सकी वह क्या तुम्हें आगे बढ़ो बताएगी ?
रसोई में ही जिंदगी है यह बात कौन झुठलाएगा?
तुम रोती रहोगी तो यह पूरा ब्रह्मांड तुम्हें रुलाएगा,
सोचो कभी दुनिया हार खुद के साथ चली हो क्या?
सुनो बेटी तुम सच में आजाद हो क्या?

मैं सही ना सहीं पर ग़लत भी तो नहीं हूँ,
हर एक इल्ज़ाम लाया लगा दिया खिलौना भी तो नहीं हूँ|
नाचते नाचते तुम्हें अलग ही कुछ नज़र आती होंगी मगर ,
सच इशारो पर तुम्हारे नाचती रहूँ कठपुतली भी तो नहीं हूँ ।।

अहिल्या: लोकमाता का शाश्वत तेज

नर्मदा की लहरों पर अंकित, वह न्याय का अमिट विधान थी,
मालवा की माटी का गौरव, और मानवता का मान थी।
नहीं मुकुट का मोह जिसे था, न सिंहासन की अभिलाषा,
उसने सेवा के संकल्पों से, लिखी राजधर्म की भाषा।
वैधव्य की काली छाया ने, जब जीवन पथ को घेरा था,
अहिल्या के अदम्य साहस ने, किया नया सवेरा था।
छोड़ मोह संसार का उसने, शिव को अपना नाथ चुना,
लोक-कल्याण के धागों से, राज्य का सुंदर भाग्य बुना।
वही हाथ जो मंदिर गढ़ते, वही हाथ तलवारें भी,
काँप उठीं थी उसकी भृकुटि देख, शत्रु की ललकारें भी।
काशी से रामेश्वरम तक, उसने पुण्य की ज्योति जलाई,
खंडहर होते विश्वासों में, फिर आस्था की अलख जगाई।
वह केवल रानी नहीं, वह दुखियारी का सहारा थी,
अन्याय के रेगिस्तान में, न्याय की शीतल धारा थी।
इतिहास ने देखा एक नारी को, ईश्वर का रूप धरते,
आज भी नर्मदा गाती है, उसकी गाथा युगो-युगो अमरते।

पद्मिनी: स्वाभिमान की पवित्र ज्वाला

वह केवल रूप का उत्सव नहीं,
वह तेज का विस्तार थी,
चित्तौड़ की मर्यादा का,
वह जीवंत सार थी।
सिंहल के स्वप्न से उठकर,
जो मेवाड़ का मान बनी,
वह कोमल पंखुड़ी होकर भी,
वज्र सी चट्टान बनी।
जब कपट की काली परछाईं,
गढ़ के द्वारों तक आई,
तब रूप की रानी ने,
रणचंडी की हुंकार जगाई।
खिलजी की गंदी आँखों में,
जो धूल बनकर झोंक दी,
वह पद्मिनी ही थी,
जिसने काल की गति रोक दी।
नहीं स्वीकार था उसको,
किसी परछाईं का भी अपमान,
धधकती ज्वालाओं में उसने,
खोज लिया अपना आसमान।
सोलह हजार सतियों के संग,
जब वह अग्नि-कुंड में उतरी,
मानो स्वयं पवित्रता,

मृत्यु के हाथों से निखरी।
वह जौहर नहीं था कायरता का,
वह तो महाविस्फोट था,
मर्यादाहीन सत्ता के मुँह पर,
करारी चोट था।
राख की उन ढेरी में,
आज भी गूँजती एक कहानी है,
कि 'सती' वही है,
जो अपनी अस्मत की खुद पहरेदानी है।

अजेय चेतना की उड़ान

अब झुका सके जो मस्तक को, वो कोई दीवार नहीं,
भारत की इन बेटियों को, हार अब स्वीकार नहीं।
ये रणभेरी की गूँज बनीं, ये नभ को छूने निकली हैं,
इनके संकल्पों के आगे, पर्वत की भी धार नहीं।।
कभी कलम की धार बनी, कभी सीमा पर हुंकार बनी,
ये ऋचा बनीं वेदों की, तो कभी प्रखर तलवार बनी।
इतिहास के कोरे पन्नों पर, ये अपना भाग्य लिख रही हैं,
जो थक कर घर में बैठ जाए, वो इनका संस्कार नहीं।
अब झुका सके जो मस्तक को, वो कोई दीवार नहीं।।
विज्ञान के सूक्ष्म तंतु हों, या अम्बर की अनंत डगर,
हर क्षेत्र में इनके पदचिह्न, दे रहे विजय की नयी ख़बर।
ये मंगल तक की यात्रा को, पलकों में सहेज कर चलती हैं,
इनके उड़ते अरमानों को, सीमा का कारागार नहीं।
अब झुका सके जो मस्तक को, वो कोई दीवार नहीं।।
ये माँ का पावन ममता-रस, ये बहन का निश्छल प्यार भी,
पर वक्त पड़े तो चंडी हैं, ये महाकाल की धार भी।
ये सहिष्णुता की मूरत हैं, पर निर्बलता की पहचान नहीं,
इनकी आँखों के सपनों का, अब कोई भी आधार नहीं (असीमित हैं)।
भारत की इन बेटियों को, हार अब स्वीकार नहीं।।

मन की बातें

चेतना का विस्तार या व्यसनों का श्रृंगार?

आज के दौर में 'आधुनिक' शब्द की परिभाषा बड़ी विचित्र हो गई है। अक्सर हम प्रगतिशीलता को जीवनशैली की चकाचौंध और पश्चिमी अंधानुकरण से मापने लगे हैं। मैं स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि मैं आधुनिकता के विरुद्ध नहीं हूँ, बल्कि मैं उस वैचारिक खोखलेपन के विरुद्ध हूँ जो व्यसनों को सशक्तिकरण का नाम देता है।

आधुनिक होने का अर्थ है—तर्कसंगत होना, शिक्षित होना, स्वावलंबी होना और रूढ़ियों को तोड़कर आकाश छूने का साहस रखना। लेकिन, क्या एक हाथ में छलकती शराब का गिलास और दूसरे में सुलगती सिगरेट का धुआं किसी महिला की उन्नति का पैमाना हो सकता है?

- भ्रम: शराब और सिगरेट को 'स्वतंत्रता' का प्रतीक मान लेना।
- यथार्थ: नशा चाहे पुरुष करे या महिला, वह केवल शरीर और चेतना का क्षय करता है। इसे 'फैशन' या 'स्टेटस सिंबल' कहना बौद्धिक दिवालियापन है।

क्या यही है सशक्तिकरण?

जब हम सशक्तिकरण की बात करते हैं, तो हमारा ध्येय उन बेड़ियों को काटना होता है जो महिलाओं को शिक्षा, स्वास्थ्य और निर्णय लेने के अधिकार से वंचित रखती थीं। लेकिन आज की इस तथाकथित आधुनिक विचारधारा ने एक नई बेड़ी तैयार कर दी है—'दिखावे की बेड़ी'।

"सच्ची आधुनिकता वह है जो नारी के विचारों में तेज, कर्मों में शुचिता और व्यक्तित्व में आत्मविश्वास भरे, न कि वह जो उसे स्वास्थ्य और संस्कारों की बलि देकर केवल एक 'कूल' दिखने वाली वस्तु बना दे।"

फैशन नहीं, यह भटकाव है

फैशन वह है जो आपकी शालीनता और व्यक्तित्व को निखारे। यदि धुएं के छल्लों में 'मॉडर्न' दिखने की होड़ लगी है, तो हमें रुककर सोचना होगा कि हम आने वाली पीढ़ी को क्या विरासत दे रहे हैं।

- शिक्षा और करियर: असली आधुनिकता है कल्पना चावला की उड़ान में।

- कला और संस्कृति: असली आधुनिकता है अपने मूल्यों को साथ लेकर वैश्विक मंच पर खड़े होने में।
- स्वतंत्रता: असली स्वतंत्रता अपनी आदतों पर नियंत्रण रखने में है, न कि किसी व्यसन का गुलाम बनने में।

मैं उस आधुनिकता का स्वागत करती हूँ जहाँ महिलाएँ डॉक्टर, इंजीनियर, सेनाधिकारी और विचारक बनकर राष्ट्र निर्माण करें। परंतु, मैं उस विचारधारा के डंके की चोट पर खिलाफ हूँ जो नशे की लत को 'नारीवाद' का चेहरा बनाकर पेश करती है। मर्यादा और स्वास्थ्य को ताक पर रखकर किया गया आचरण आधुनिकता नहीं, बल्कि आत्मघाती भटकाव है।

आधुनिकता की चकाचौंध और बिसरता पारंपरिक श्रृंगार

आज का युग विज्ञापन और प्रदर्शन का युग है। बाज़ार ने हमें 'फैशन' तो दिया, लेकिन शायद हमसे हमारा 'श्रृंगार' छीन लिया। वर्तमान समय में महिलाएँ वैश्विक रुझानों (Global Trends) **की अंधी दौड़ में इस कदर शामिल हैं कि वे भूल गई हैं कि भारतीय संस्कृति में श्रृंगार केवल शरीर को सजाना नहीं, बल्कि आत्मा का उत्सव मनाना था।**

1. **परिधान नहीं, पहचान का प्रश्न**

फैशन अक्सर बाहरी आवरण तक सीमित होता है; यह अस्थायी है, जो हर मौसम के साथ बदल जाता है। किंतु हमारी परंपराओं का श्रृंगार शाश्वत था। जब एक स्त्री माथे पर सिंदूर या बिंदिया सजाती थी, तो वह केवल सौंदर्य के लिए नहीं था। वह उसके अस्तित्व, ऊर्जा केंद्र (आज्ञा चक्र) और सौभाग्य का प्रतीक था। आज 'ट्रेंड' के चक्कर में हम उन प्रतीकों को बोझ समझने लगे हैं, जो कभी हमारी शक्ति का आधार थे।

बाज़ार द्वारा थोपा गया फैशन अक्सर 'दिखने' पर जोर देता है, जबकि भारतीय मूल्यों का श्रृंगार 'होने' पर बल देता था।

कांच की चूड़ियां: इनकी खनक केवल ध्वनि नहीं, बल्कि घर की जीवंतता का प्रमाण थी।

पायल की रुनझुन: यह स्त्री के आगमन की मर्यादित सूचना थी।

आलता और मेहंदी: ये केवल रंग नहीं, बल्कि प्रकृति के साथ हमारे जुड़ाव के संकेत थे।

आज हम महंगे ब्रांड्स और विदेशी डिज़ाइन्स की चकाचौंध में इतने खो गए हैं कि हमें मिट्टी की वह सोंधी खुशबू और अपनी जड़ों की वह गरिमा फीकी लगने लगी है।

यह चिंता का विषय है कि हम जिसे 'अपडेट' होना कह रहे हैं, कहीं वह हमारी सांस्कृतिक विस्मृति तो नहीं? फैशन हमें भीड़ का हिस्सा बनाता है, जबकि हमारी परंपराएं हमें एक विशिष्ट पहचान देती थीं। चकाचौंध भरी इस दुनिया में हम यह भूल रहे हैं कि सादगी में जो लालित्य (Elegance) है, वह दुनिया के किसी भी महंगे फैशन लेबल में नहीं मिल सकता।

"श्रृंगार वह नहीं जो चमड़ी को चमका दे, श्रृंगार वह है जो चरित्र को महका दे।"

समय की मांग है कि हम आधुनिक अवश्य बनें, लेकिन अपनी विरासत की कीमत पर नहीं। फैशन को अपनाएं, पर उसे अपनी पहचान न बनने दें। हमारी परंपराएं, हमारे संस्कार और हमारा प्राचीन श्रृंगार इस कृत्रिम दुनिया के चमक-धमक वाले कांच से कहीं अधिक मूल्यवान और ऊंचे हैं।

आइए, फिर से उस बिंदिया की गरिमा और पायल की मर्यादा को पहचानें, क्योंकि असली सौंदर्य 'दिखावे' में नहीं, 'दृष्टिकोण' में होता है।

स्वयं में शक्ति, स्वयं ही सारथि

"शक्ति का अस्तित्व बाहर नहीं, तुम्हारे भीतर है; बस उसे पहचानने की देर है।"

हर बेटी और हर स्त्री को यह बोध होना चाहिए कि वह केवल हाड़-मांस का शरीर नहीं, बल्कि आदिशक्ति का जीवंत अंश है। तुम्हारे भीतर माँ दुर्गा के वे नौ रूप समाहित हैं, जो निर्माण और संहार दोनों की क्षमता रखते हैं।

- तुम्हारे भीतर शैलपुत्री का धैर्य है, ब्रह्मचारिणी की तपस्या है, और चंद्रघंटा की निर्भीकता है।
- जब तुम संघर्ष करती हो तो कालरात्रि हो, और जब तुम स्नेह लुटाती हो तो महागौरी।

तुम जो चाहो, वह कर सकती हो। ब्रह्मांड की कोई भी बाधा तुम्हारे संकल्प से बड़ी नहीं है। इसलिए कभी हार मत मानना। जब दुनिया तुम्हारा साथ छोड़ दे, तब भी अपने साथ अडिग खड़ी रहना, क्योंकि तुम्हारी अंतरात्मा ही तुम्हारी सबसे बड़ी शक्ति है।

नारी ही बने नारी की शक्ति

इतिहास गवाह है कि नारी को हराना तब तक असंभव रहा है, जब तक उसे अपनों का साथ मिला है। आज समय की मांग है कि हम एक-दूसरे की ईर्ष्या छोड़कर एक-दूसरे की ताकत बनें।

"जब तुम किसी दूसरी बेटी या महिला को सफलता की सीढ़ियाँ चढ़ते देखो, तो अपने सारे द्वंद्व और मतभेद भुलाकर उसके पीछे एक चट्टान की तरह खड़ी हो जाओ।"

जब तक नारी की शक्ति नारी खुद नहीं बनेगी, तब तक यह दुनिया स्त्री के सामर्थ्य को स्वीकार करने में संकोच करेगी। एक स्त्री की जीत, पूरी स्त्री जाति की जीत है। जब एक महिला दूसरी महिला का हाथ पकड़ती है, तो वह केवल एक व्यक्ति की मदद नहीं करती, बल्कि वह आने वाली पीढ़ियों के लिए एक रास्ता बनाती है।

तुम अकेली लड़ोगी तो थक सकती हो, लेकिन यदि तुम सब मिलकर एक-दूसरे का संबल बनोगी, तो इस दुनिया की कोई भी शक्ति तुम्हें पराजित नहीं कर पाएगी। अपनी जड़ों से जुड़ी रहो, अपने स्वाभिमान को सहेज कर रखो और संकल्प लो कि तुम 'नारी' होकर 'नारी' की सबसे बड़ी ढाल बनोगी।

'संस्कारों का चीरहरण'

मैं आधुनिक हूँ, मैं शिक्षित हूँ और मैं भी इसी युग की बेटी हूँ जो तकनीक और सोशल मीडिया के सामर्थ्य को जानती है। लेकिन, जब मैं सोशल मीडिया के पटल पर अपनी ही बहनों को 'व्यूज' और 'लाइक' की अंधी दौड़ में नग्नता परोसते देखती हूँ, तो मेरा सिर शर्म से झुक जाता है।

मेरा विरोध केवल उन भटकी हुई बेटियों से नहीं है, मेरा बड़ा प्रश्न उन माता-पिता से है जिन्होंने अपनी आँखों पर आधुनिकता की पट्टी बाँध ली है। क्या आपकी ममता इतनी कमजोर पड़ गई कि आप अपनी बेटी को 'बाजार की वस्तु' बनते देख रहे हैं? क्या आपने उन्हें यह नहीं सिखाया कि देह का प्रदर्शन शौर्य नहीं, बल्कि आत्म-सम्मान का अभाव है?

संस्कार बेड़ियाँ नहीं, कवच हैं

मैं भी सोशल मीडिया का भरपूर उपयोग करती हूँ, पर मैं जानती हूँ कि मुझे दुनिया को क्या दिखाना है। मेरी पहचान मेरे विचारों से है, मेरी प्रतिभा से है, न कि मेरी देह की नुमाइश से। हमारी संस्कृति ने हमें 'दुर्गा' और 'सरस्वती' का रूप माना है, 'नुमाइश की वस्तु' नहीं।

"जिस समाज में बेटियाँ मर्यादा की लक्ष्मण रेखा को आधुनिकता का बंधन समझने लगें और माता-पिता मौन रहकर इसे स्वीकार कर लें, उस समाज का पतन निश्चित है।"

एक कड़वा सच

महानगरों की चकाचौंध में यह मत भूलो कि जो आज तालियां बजा रहे हैं, वे कल तुम्हारे चरित्र पर प्रश्न चिह्न लगाएंगे। माता-पिता को समझना होगा कि बेटी को 'स्वतंत्रता' देने और 'उच्छृंखलता' की छूट देने में बहुत महीन अंतर है। यदि आपने उसे मूल्यों की पहचान नहीं कराई, तो वह भीड़ में अपनी पहचान खो देगी।

बेटियों, अपनी ऊर्जा को सृजन में लगाओ, प्रदर्शन में नहीं। सोशल मीडिया को अपनी बौद्धिक क्षमता का मंच बनाओ, न कि संस्कारों की बलिबेदी। याद रखना, असली 'इन्फ्लुएंसर' (Influencer) वह है जो समाज को दिशा दे, वह नहीं जो समाज को पतन की ओर ले जाए।

अभी भी समय है—अपनी मर्यादा को अपना गौरव बनाओ, अपनी कमजोरी नहीं।

आकाश की ऊंचाइयों को नापो

सृष्टि के सृजन में स्त्री का अस्तित्व एक दैवीय वरदान की तरह है। एक बेटी जब किसी आंगन में जन्म लेती है, तो वह केवल एक नाम नहीं, बल्कि अपने पिता का गौरव और माता की परछाई बनकर आती है। आज के इस आधुनिक युग में, जब बेटियाँ घर की चौखट लांघकर महानगरों की चकाचौंध और वैश्विक पटल पर अपनी पहचान बना रही हैं, तब उनके कंधों पर दोहरी जिम्मेदारी है— सफलता का शिखर छूना और संस्कारों का दीप जलाए रखना।

पिता का गर्व: एक अनमोल धरोहर

बेटी, यदि तुम्हें कुछ बनना ही है, तो अपने पिता के मस्तक का वह स्वाभिमान बनो जिसे वह समाज में सीना तानकर प्रदर्शित कर सकें। तुम्हारी सफलता केवल तुम्हारे पद या वेतन से नहीं मापी जाएगी, बल्कि इस बात से मापी जाएगी कि विश्व पटल पर तुम्हारी चमक देख कर क्या दुनिया यह कह सकती है कि "इस बेटी के संस्कार इसकी प्रतिभा से भी ऊंचे हैं?"

तुम्हारे भीतर वह सामर्थ्य है कि तुम न केवल अपने परिवार का, बल्कि देश और संपूर्ण विश्व का नेतृत्व कर सको। अपनी मेधा और परिश्रम से ऐसा इतिहास रचो कि आने वाली पीढ़ियाँ तुम्हारा नाम सम्मान और श्रद्धा के साथ लें।

आधुनिकता की चमक और संस्कारों की कसौटी

महानगरों की चकाचौंध अक्सर आँखों को सुकून तो देती है, पर कई बार वे दृष्टि को धुंधला भी कर देती हैं। विकास की इस अंधी दौड़ में यदि कभी तुम्हें ऐसा लगे कि तुम्हारी स्वतंत्रता, तुम्हारे माता-पिता द्वारा दिए गए उन संस्कारों को धूमिल कर रही है जो तुम्हारी असली पहचान हैं, तो रुककर सोचना।

"वह उन्नति किस काम की, जो अपनों की नजरों में तुम्हें गिरा दे? वह सफलता बेमानी है, जिसके पीछे तुम्हारे माता-पिता की तपस्या और मर्यादा का अपमान हो।"

यदि महानगर की हवाएं तुम्हारे चरित्र की शुचिता और संस्कारों की मर्यादा को डिगाने लगें, तो याद रखना कि तुम्हारी असली ताकत उस दिखावटी चमक में नहीं, बल्कि तुम्हारे घर की उस सादगी और नैतिक मूल्यों में है। यदि तुम्हें लगे कि तुम भटक रही हो, और तुम्हारे कदम उन रास्तों पर जा रहे हैं जहाँ से तुम्हारे माता-पिता के त्याग पर 'आंच' आए, तो अभी वक्त है, संभल जाओ।

वापसी का साहस

स्वयं को खोकर कुछ भी पाना उपलब्धि नहीं, बल्कि पराजय है। यदि आधुनिकता के नाम पर तुम अपनी जड़ों से कट रही हो, तो वापस अपनी माटी की ओर लौट आना ही श्रेष्ठता है। घर की वह छोटी सी दहलीज उस बेनाम शहर के आलीशान मकान से कहीं बेहतर है, जहाँ संस्कारों की बलि चढ़ानी पड़े।

बेटियों, तुम इस राष्ट्र का भविष्य हो। तुम ऐसा बनो कि दुनिया तुम पर गर्व करे, न कि ऐसा कि तुम्हें अपनों से ही नजरें चुराना पड़ जाए। अपनी उड़ान इतनी ऊंची रखो कि आसमान छोटा पड़ जाए, लेकिन यह सुनिश्चित करना कि तुम्हारे पैरों के नीचे हमेशा संस्कारों की वह धरती रहे, जो तुम्हें तुम्हारे माता-पिता ने विरासत में दी है।

'मैं और तुम, एक ही राह के राही'

जब मैं यह लिख रही हूँ, तो यह केवल शब्द नहीं बल्कि मेरी अपनी अनुभूतियों का निचोड़ है। मैं भी कहीं न कहीं तुम्हारी ही उम्र की हूँ और बचपन से ही घर की ममतामयी छाँव से दूर, बाहर रहकर अपनी पढ़ाई और सपनों को पूरा कर रही हूँ। मैं जानती हूँ कि जब हम छोटे शहरों या गाँवों से निकलकर महानगरों की चकाचौंध में आते हैं, तो यह दुनिया हमें कितनी अलग और लुभावनी लगती है।

प्रलोभन के जाल और हमारी दृढ़ता बाहर की इस दुनिया में तुम्हारे पास ऐसे कई अवसर आएंगे, जो दिखने में सुनहरे होंगे पर उनके पीछे लालच का एक गहरा दलदल होगा। कोई तुम्हें आधुनिकता के नाम पर बहकाएगा, तो कोई 'शॉर्टकट' सफलता का लालच देगा। ये वो क्षण होते हैं जब हमारी परवरिश और हमारे माता-पिता के दिए हुए संस्कारों की असली परीक्षा होती है।

मैं अपने अनुभव से तुम्हें यह विश्वास दिलाना चाहती हूँ— कि तुम डटे रहना। जब तुम्हारे कदम लड़खड़ाने लगें या कोई प्रलोभन तुम्हें अपनी जड़ों से दूर ले जाने की कोशिश करे, तो बस एक बार अपने पिता के संघर्ष और माँ की उम्मीदों को याद कर लेना। याद रखना कि हम यहाँ केवल डिग्री लेने या करियर बनाने नहीं आए हैं, बल्कि हम अपने परिवार के विश्वास के प्रतिनिधि (Representatives) बनकर आए हैं।

संस्कार: तुम्हारा अभेद्य कवच एक बात गांठ बांध लो, यदि तुम अपने संस्कारों के साथ अडिग खड़ी हो, तो दुनिया की कोई ताकत तुम्हें डरा नहीं सकती। संस्कार हमें कमजोर नहीं, बल्कि आत्मबल से भरपूर बनाते हैं। जब तुम अपने चरित्र की पवित्रता और नैतिक मूल्यों की स्पष्टता के साथ जीती हो, तो तुम्हारी आँखों में एक ऐसा तेज और आत्मविश्वास होता है कि किसी 'माई के लाल' की हिम्मत नहीं होगी कि वह तुम्हें गलत नजर से देख सके या तुम्हारा अनादर कर सके।

तुम्हारी मर्यादा ही तुम्हारा सबसे बड़ा सुरक्षा कवच है। जो स्त्री अपने मूल्यों से समझौता नहीं करती, पूरा विश्व उसके सामने नतमस्तक होता है।

आओ हम मिलकर यह संकल्प लें कि हम ऊंचाइयों को तो छुएंगे, लेकिन अपनी गरिमा की कीमत पर नहीं। हम अपनी सफलता से इतिहास तो लिखेंगे, लेकिन उस

इतिहास की स्याही हमारे माता-पिता के गौरव से बनी होगी। डटी रहो, क्योंकि तुम्हारी दृढ़ता ही आने वाली पीढ़ियों के लिए मिसाल बनेगी।

आत्म-मंथन

"शब्दों की कठोरता के लिए क्षमा चाहती हूँ, पर यह पीड़ा उस प्रेम से उपजी है जो मुझे मेरी मिट्टी और मेरी बहनों से है।"

यदि मेरे शब्दों में कहीं कोई तीखापन या कठोरता महसूस हुई हो, तो मैं हृदय से क्षमाप्रार्थी हूँ। मेरा उद्देश्य किसी की भावनाओं को ठेस पहुँचाना नहीं, बल्कि उस अंतरात्मा को झकझोरना है जो आधुनिकता के शोर में कहीं सो गई है। एक बेटी होने के नाते, जब मैं अपनी जड़ों को कटते देखती हूँ, तो मन का उद्वेग शब्दों में कठोरता बनकर उतर आता है। यह कठोरता द्वेष नहीं, बल्कि एक गहरी चिंता है।

अंधी आधुनिकता का मृगतृष्णा

हम एक ऐसे युग में खड़े हैं जहाँ 'प्रसिद्धि' को 'सिद्धि' मान लिया गया है। महानगरों की चकाचौंध और सोशल मीडिया की आभासी दुनिया हमें एक ऐसी अंधी दौड़ में धकेल रही है, जहाँ गंतव्य का तो पता नहीं, पर हम अपनों को पीछे छोड़ते जा रहे हैं। हमें समझना होगा कि आधुनिक होने का अर्थ शालीनता का त्याग करना नहीं है। माता-पिता से मेरा सविनय निवेदन है कि अपनी बेटियों को पंख अवश्य दें, पर उन्हें यह भी सिखाएं कि उन पंखों का उपयोग संस्कारों के आसमान में उड़ने के लिए करना है, न कि मर्यादाओं को जलाने के लिए।

संस्कृति: हमारी अंतिम ढाल

अभी भी वक्त है। समय की रेत अभी पूरी तरह हाथ से फिसली नहीं है। यदि हम आज भी सचेत हो जाएं और अपनी बेटियों को यह बोध कराएं कि उनकी असली शक्ति उनके चरित्र और उनकी मेधा में है, तो हम अपनी महान संस्कृति को विलुप्त होने से बचा सकते हैं।

"संस्कृति केवल मन्दिरों या पोथियों में नहीं बसती, वह हमारे आचरण और हमारी बेटियों की गरिमा में जीवित रहती है।"

एक विनम्र आह्वान

आइए, हम सब मिलकर एक ऐसा वातावरण बनाएं जहाँ बेटी को आगे बढ़ने के लिए अपनी जड़ों को न काटना पड़े। जहाँ वह 'ग्लैमर' की मोहमाया से ऊपर उठकर 'गौरव' का मार्ग चुने। जब घर का संस्कार और बाहर का सामर्थ्य एक साथ मिलेंगे, तभी हमारा देश और हमारी संस्कृति विश्व पटल पर पुनः अपनी श्रेष्ठता सिद्ध कर पाएगी।

मेरी कटुता को मेरी चिंता समझकर स्वीकार कीजिएगा, क्योंकि मेरा लक्ष्य केवल एक ही है— मेरी संस्कृति बची रहे, मेरी बहनें सुरक्षित रहें।

मुक्तक

मन में अटूट देश-प्रेम का ज्वार मिलेगा,
संस्कार, शक्ति, शील का आधार मिलेगा।
देश की उस माटी में जो खुद को सौंप दें,
उसे माँ भारती की सेवा का अधिकार मिलेगा ||

धरा की धूल माथे पर, तिलक बनकर चमकती है,
वतन की लाज रखने की, तड़प मन में दहकती है।
समर्पित राष्ट्र सेवा में, हमारी साँस का हर कण,
जहाँ संस्कार पलते हैं, वही शाखा महकती है ||

पीड़िता जब तक है बेटी , तो लिखूँ श्रृंगार कैसे ?
अश्रुपूर्ण आँखें जहाँ हों , लिखूँ लाली लाल कैसे ?
पायल लिखूँगी उसकी रुनझुन , चूड़ियों की खनक भी मैं ।
गड़ी चूड़ी जब हाथ में हों , तो लिखूँ श्रृंगार कैसे ??

भले रफ्तार दुनिया की मुझे पीछे बताती है,
मगर मेरी दृढ़ता जीत के किस्से सुनाती है।
कदम पीछे हैं बेशक, पर अभी हिम्मत नहीं हारी,
कि गिर कर उठने वालों को ही दुनिया सर झुकाती है ||

न समझो मौन को दुर्बल, ये तप की शक्ति भारी है,
जहाँ अपमान हो बेटी, वहाँ भीषण कटारी है।
उठाई आँख जो कलुषित, तो कुल का नाश निश्चित है,
कि परशुराम के वंशज की, अभी तक धार जारी है ||

लड़ने वाला लड़ते लड़ते किस्मत से लड़ जाएगा ,
फिर कैसे नियति लिखने वाला पत्थर सा बन जाएगा ।
फलस्वरूप परिणाम अगर ना लिक्खा हो हक में उसने ,
पुरुषार्थी वहाँ भी रुके नहीं ख़ुद राह वो अपनी बनाएगा ||

मिले खुशियाँ जिसे जितनी, उसे तुम और दे देना,
दिए जिसने मुझे आँसू, उसे सुख-भोर दे देना।
दुआ है अंत में बस ये, तिजोरी भर दे सबकी तू,
दिया जिसने मुझे जो भी, उसे दुगना ही दे देना ||

अगर गौरव नहीं रक्खा तो फिर अभिमान भी छोड़ो,
अगर हो ढोंग करना बस धर्म की राह भी छोड़ो।
बिके जो चंद सिक्को में, वो पूर्वजों की लाज क्या देंगे,
न हो जो वंश पर गर्वित, तो अपना नाम भी छोड़ो ||

जो अपनी जड़ को तज दे, वो कभी फल पा नहीं सकता,
गँवाकर धर्म अपना, मान वह पा नहीं सकता।
मिटा दे जो विरासत को, वो गौरव क्या बढ़ाएगा,
गया जो राम को तजकर, कहीं सुख पा नहीं सकता ||

वो महलों को तजे पल में, वही तो राम कहलाता,
जो काँटों पर भी मुस्काए, वही तो राम कहलाता।
तपस्या की अगन में खुद को तुम पहले तपा तो लो,
जो मर्यादा में रहकर जिए, वही तो राम कहलाता ||

दिखावे की इबादत से कभी भी फल नहीं मिलता,
बिना आचरण के कोई हृदय में चल नहीं मिलता।
बना लो मन को अपने तुम अयोध्या की पावन नगरी,
जहाँ श्री राम रहते हों, वहाँ छल-बल नहीं मिलता ||

सत्य की डोरी पकड़कर जो, हर हाल में मुस्काएगा,
रावण सरीखे मोह को, वो ही पटक दे पाएगा।
चाहत अगर है राम की, तो राम सा बनिए ज़रा,
जो राम पथ पर चल पड़ा, वो राममय हो जाएगा ||

मुख पे हो नाम राम का, पर मन में रावण न वास हो,
छल-कपट के साए में, भक्ति का सच्चा न प्रकाश हो।
वो मिलेंगे तभी तुम्हें, जब पग उनके पथ पर जाएँगे—
राम को पाने के लिए, बस राम सा ही विश्वास हो ||

बुलंदी की हवस में सीढ़ियाँ चढ़ते ही जाते हैं,
मगर क्या सत्य की ऊँचाई को हम छू भी पाते हैं?
रुको दो पल, करो खुद का ही तुम आकलन प्यारे,
जो खुद को जीत लेते हैं, वही मंज़िल को पाते हैं ||

कलि के कठिन काल में मानव, ये ही तीन आधार समझ,
आत्म-बोध, शास्त्र-अध्ययन और संतों का उपहार समझ।
कामना के बीज जलेंगे, मन निर्मल हो जाएगा,
सार्थकता है जीवन की, इसे सत्य का सार समझ ||

क्षण भर का सत्संग मिटा दे, जन्मों के अपराध यहाँ,
जैसी संगत वैसी रंगत, खिलते वैसे ही भाव यहाँ।
कुसंग बढ़ाए मोह-जाल को, बुद्धि को भी हर लेता है,
संतों का सान्निध्य करा दे, भव-सागर से पार यहाँ ||

जब तक न मिले वो सच्चिदानंद, शास्त्र ही हाथ पकड़ते हैं,
भ्रम के काले बादलों को, ये ज्ञान की ज्योति से हरते हैं।
मौन हुआ मधु पीकर भँवरा, लक्ष्य प्राप्त जब होता है,
पर पहुँचने से पहले राही, शास्त्रों से ही संवरते हैं ||

अपनों ने पीठ दिखाई तो हम बिखर जाते हैं,
किस्मत को दोष देकर खुद ही ठहर जाते हैं।
राम ने तो वनवास देने वाली माँ के भी पैर छुए,
हम ज़रा से अपमान में रिश्तों से मुकर जाते हैं ||

कितना कुछ पीछा छूटा है, आगे आने की ख़ातिर।
राहें राहें भटक रहीं हूँ , मंज़िल पाने की ख़ातिर।
बड़ी सरल जो लगती हैं , जीवनपथ पर मेरी राहें।
बहुत परीक्षा दी है मैंने , अनुभव पाने की खातिर॥

पीर आँखों से बही है और निकल सैलाब हो ली,
एक मेहंदी और महावर देश पर क़ुर्बान हो ली।
तुम तो कहते हो बहुत हैं फ़ायदे क़ुर्बानी के भी—
पूछो उन पर क्या गुज़री, जिनकी दुनिया वीरान हो ली ||

मैं लिख्खूँ तो लिखूँगी धरती चमन ,
तुम लिक्खों तो सावन ग़ज़ल लिख के लाना ।
मैं लिक्खूँ तो लिखूँगी हरदम वतन,
तुम लिखो तो केवल एक वाह लिख के लाना ॥

हाँ झाँसी की रानी है वो , वो कमजोर क्या पड़ सकती है।
ऐसी छोटी मोटी बातों से, कैसे नयन भीगो सकती हैं,
विघ्न जितने आयेंगे, उतनी ही ताक़त बढ़ चलेगी ,
तू वो है जो हर एक युद्ध, रण बीच अकेली लड़ सकती है ।।

नारी अब केवल सहने वाली कहानी नहीं है,
वो चेतना है, चिंगारी है, बग़ावत पुरानी नहीं है।
हर युद्ध में उसकी हिस्सेदारी लिखी है समय ने,
झाँसी की रानी एक नाम नहीं — चेतावनी है ।।

फौलादी महिला है उसको रोली कुमकुम मत समझो ,
अच्छी लगती है चरणों में शरणागत तुम मत समझो ।
और समझ रहे हो अभी भी बातों से सबकी डर जाऊँगी ,
अरे दुर्गा हूँ मैं चामुण्डा भी मुझे गुज़रिया मत समझो ।।

रानी बनना हो बन जाओ पर मर्यादा का भान रहे ,
निष्कलंक जियो इस पृथ्वी पर,पर हाँ संस्कृति सब साथ रहे।
जीते रहना हस्ते रहना लिखते रहना खिलते रहना ,
कितना भी ऊँचा उठ लो पर इज़्ज़त से जीना याद रहे ।।

खामोशी हो मर्यादा की वो मुरती बनेंगे हम ,
पत्नी है तो नित्य प्रति सुंदर सिंदूर भरेंगे हम |
पर जो आँखे दिखलाएगा बढ़कर देश अहित में हमको ,
ऐसे हिंसक हत्यारों की खातिर काल बनेंगे हम ||
बता रहे हो बेटी को की जाओ पिता को बतला देना ,
देखो अच्छा नहीं पिता से आगे बढ़कर पंगा लेना |
उसी सिंदूर से लेंगे बदला और फिर सिंदूर भरेंगे हम ,
ऐसे अहिंसक हत्यारो की खातिर काल बनेंगे हम ||

संस्कृति की धानी चादर अच्छी है ,
रहती जो चुप सबकी सुनके, कहते है वो अच्छी है।
इक रोज़ जो माँ ने सिखलाया था कैसे रहना बेटी बनकर ,
अब लगता हैं दी जो माँ ने सारी सींखें अच्छीं हैं ।।

राम को पाना हो जो तुमको राम सा बनना भी होगा ,
आशा गर श्री राम की होगी ख़ुद को बदलना भी होगा ।
बैठे - बैठे सोच रहे हो राम जी सा बनने की तुम,
राम सा बनना है तो प्रभु के पथ पर चलना भी होगा ।।

वो ईश्वर ने चाहा तो इक दिन को मैं उड़-उड़ के लेआऊँगी अम्बर से जुगनू ,
अँधेरे की क्या बात होगी भला फिर जो आँगन में होंगे मेरे सारे जुगनूँ ।
नहीं उड़ सकी कलको अम्बर तलक मैं ,बताओ कहाँ से मैं पाऊँगी जुगनूँ?
भरोसा अभी भी नहीं है क्या मुझपर ? ना पाई तो ख़ुद बन ही जाऊँगी जुगनूँ ।।

तुम्हारे जाने के बाद लोग तुम्हें याद करते हैं ,
अब जब तुम जा चुके हो लौट आने की फ़रियाद करते हैं ।
वो चाहते हैं अब तुम्हें पाना तुमसे बतियाना,
अजीब हैं ना कहानी ख़त्म होने पर प्रसंग बुनना चाहते हैं ।।

वक़्त देती हैं सभी को अपना हिस्सा काटकर ,
जीतती है दिल सभी का अपने मन को मारकर।
उस पिता की गुड़िया रानी बन गई है अब बहू,
मुस्कुराती रहती है सब खुशियाँ अपनी हार कर।।

पिता का अभिमान होती हैं बेटियां ,
उसके सरकार ताज होती हैं बेटियां।
ख़ूब कहता होगा कोई लड़का तुम्हें दुनिया अपनी,
अरे पिता का तो सारा ब्रह्माण्ड होती हैं बेटियां।।

अंतिम शब्द नहीं, एक नई शुरुआत

इस पुस्तक के अंतिम पृष्ठ तक पहुँचते-पूँछते, शायद आप मेरे विचारों की लहरों से परिचित हो चुके होंगे। 24 वर्ष की इस आयु में, जब दुनिया मुझे केवल 'युवा' देखती है, मैं स्वयं को उन सदियों पुरानी परंपराओं और आधुनिक सपनों के बीच के एक सेतु (Bridge) के रूप में देखती हूँ। "पंख तेरे हैं!" को विराम देते समय मेरे मन में कोई अहंकार नहीं, बल्कि एक गहरी कृतज्ञता है।

अक्सर मुझसे पूछा जाता है कि क्या मैं 'नारीवाद' की समर्थक हूँ? मैं कहती हूँ—मैं उस शक्ति की उपासक हूँ जो नारी के भीतर जन्मजात है। मेरे लिए सशक्त होने का अर्थ पुरुषों के समकक्ष खड़े होकर युद्ध जीतना मात्र नहीं है। यह तुलना ही बेमानी है। मेरा दृढ़ विश्वास है कि प्रकृति ने स्त्री को जो मानसिक दृढ़ता, सहनशीलता और सृजन की शक्ति दी है, वह उसे पुरुष से कहीं अधिक सामर्थ्यवान बनाती है।

हमें पुरुष बनने की आवश्यकता नहीं है; हमें बस 'पूर्ण स्त्री' बनने की आवश्यकता है।

सशक्तीकरण का अर्थ अपनी कोमलता को कठोरता में बदलना नहीं, बल्कि अपनी कोमलता को ही अपनी सबसे बड़ी ढाल बना लेना है। जब हम पुरुषों के समान होने की कोशिश करते हैं, तो हम अनजाने में स्वीकार कर लेते हैं कि वे हमसे श्रेष्ठ हैं। जबकि सच तो यह है कि स्त्री स्वयं में एक संपूर्ण इकाई है, जिसे किसी पैमाने पर खुद को साबित करने की ज़रूरत नहीं।

"मर्यादा की जोत जलाकर, नभ को छूने निकली हूँ,
मैं आधुनिकता की लहरों में, संस्कारों की मछली हूँ।
मुझको न तौलो पुरुषों से, मैं स्वयं में इक प्रमाण हूँ,

मैं वो मज़बूत उड़ान हूँ।"

इन पन्नों के माध्यम से मैंने यह कहने का साहस किया है कि आधुनिकता का अर्थ अपनी जड़ों को काट देना नहीं है। मुझे दुख होता है जब 'आज़ादी' के नाम पर हम अपनी संस्कृति और संस्कारों को पुराना कहकर त्याग देते हैं। याद रखिये, ऊँची उड़ान भरने वाले पंख भी तभी तक सुरक्षित हैं जब तक वे एक मज़बूत शरीर से जुड़े हैं। हमारी परंपराएँ, हमारे मूल्य और हमारी मर्यादाएँ हमें कमज़ोर नहीं बनातीं, बल्कि वे हमें उस समय थामे रखती हैं जब सफलता की ऊँचाइयों पर सिर चकराने लगता है।

एक हाथ में अपनी विरासत का दीया और दूसरे हाथ में भविष्य की मशाल—यही एक नारी की वास्तविक पहचान है।

यह पुस्तक मैंने इसलिए नहीं लिखी कि मैं कोई उपदेश देना चाहती थी, बल्कि इसलिए लिखी क्योंकि मैंने महसूस किया कि आज की नारी अपनी असली शक्ति को भूलकर दूसरों के बनाए मापदंडों पर जी रही है। मैं चाहती हूँ कि हर लड़की, हर महिला जब इस किताब को बंद करे, तो उसकी आँखों में एक नई चमक हो। वह यह समझ सके कि उसके पास पंख हैं, और उन पंखों में इतनी ताकत है कि वह अपनी संस्कृति की गरिमा को बनाए रखते हुए पूरे आसमान को नाप सकती है।

मेरी कलम से निकले ये शब्द केवल स्याही नहीं, मेरे रक्त के कतरे हैं जो आपके भीतर के आत्म-सम्मान को जगाने की एक छोटी सी कोशिश हैं।

आभार

अंत में, मैं बस यही कहूँगी—अपनी उड़ान खुद तय करें, लेकिन अपनी ज़मीन को कभी न भूलें। क्योंकि जो जड़ से जुड़ा है, वही अनंत तक जा सकता है।

आकाश पुकार रहा है, अब देर न करें...

क्योंकि पंख तेरे हैं!

सस्नेह,

माही शुक्ला 'ऋषि'